बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

पूरी बेंच

बाल राज तुली, ए. डी. कोशल, एस. एस. संधावालिया, प्रेम चंद से पहले

जैन और मन मोहन सिंह गुजराल, जे.जे

बी. आर. गुलियानी,----------याचिकाकर्ता।

बनाम

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, आदि,----------प्रतिवादी।

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)
1971 की सिविल रिट संख्या 2586

13 मार्च 1975..

भारत का संविधान (1950)—अनुच्छेद 233, 235 और 320—राज्य सरकार निष्कासन, बर्खास्तगी या पुनः बहाली का आदेश पारित करती है लोक सेवा आयोग की सलाह पर एक न्यायिक अधिकारी की नियुक्ति-ऐसा आदेश—चाहे संविधान के अनुच्छेद 235 के विपरीत हो—न्यायिक अधिकारी को पद से हटाने की सजा-सिफारिश उच्च न्यायालय - क्या राज्य सरकार पर बाध्यकारी है -अनुच्छेद 311—की प्रयोज्यता—क्या न्यायिक अधिकारियों के मामले में सीमित है।

यह माना गया है, (पूर्ण पीठ के अनुसार) लोक सेवा के साथ परामर्श न्यायपालिका के सदस्यों के संबंध में आयोग को संविधान के अनुच्छेद 235 द्वारा स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया है, अन्यथा संविधान निर्माताओं ने यह प्रावधान किया होता कि उच्च न्यायालय की सिफारिश या लोक सेवा आयोग द्वारा दी गई सलाह सरकार पर बाध्यकारी होगी या नहीं यदि दोनों के बीच कोई झगड़ा हुआ हो.यदि लोक सेवा आयोग की सलाह मिशन उच्च न्यायालय की सिफ़ारिश के विरुद्ध प्रबल होना है, फिर मामलों में उच्च न्यायालय के अधिकार की एकमात्रता अनुशासन ख़त्म हो जाएगा. पूरा प्रशासनिक न्यायपालिका के सदस्यों के संबंध में नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित है और इसलिए, न्यायिक सेवा के सदस्य, हालांकि राज्य की सिविल सेवा से संबंधित हैं, इसके तहत काम नहीं करते हैं। राज्य सरकार, लेकिन केवल राज्य के मामलों के संबंध में, और इसलिए, न्यायिक अधिकारियों को अनुशासनात्मक मामलों के मामले में लोक सेवा आयोग के साथ परामर्श नहीं किया जा सकता है।. जब न्यायिक सेवा का कोई सदस्य शामिल हो तो अनुशासनात्मक मामलों के संबंध में लोक सेवा आयोग से परामर्श नहीं किया जाना चाहिए। इस पर केवल राज्य सरकार या उसके अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा परामर्श किया जाना है। हाई कोर्ट नहीं
राज्य सरकार के अधीन होने के कारण परामर्श नहीं लेना पड़ता लोक सेवा आयोग जब इसकी शक्ति केभीतर कोई दण्ड देता है इसलिए, राज्यपाल को न्यायिक सेवा के किसी सदस्य के संबंध में सेवा से हटाने या बर्खास्तगी या पुन: बहाली का आदेश पारित करने के लिए आयोग से परामर्श नहीं करना पड़ता है। लोक सेवा आयोग द्वारा दी गई सलाह के आधार पर पारित ऐसा कोई भी आदेश, जिसे राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय की सलाह और सिफारिश के बजाय स्वीकार किया जाता है, एक गंभीर संवैधानिक कमजोरी से ग्रस्त है और इसलिए, अनुच्छेद 235 के अधिकारातीत है। संविधान गैर-स्थायी है, क्योंकि आयोग एक बाहरी निकाय है, इसलिए दंड के निर्णय को प्रभावित करने के लिए उससे परामर्श नहीं किया जा सकता है। अधिकार।

माना गया, (प्रति बहुमत-तुली, कोशल। संधवालिया और जैन, जे.जे., गुजराल, जे. कॉन्ट्रा.) कि उच्च न्यायालय न्यायपालिका पर नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक है और यह नियंत्रण पूर्ण है। नियंत्रण की उस शक्ति का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय को यह तय करना होगा कि अपराधी अधिकारी किस सजा का हकदार है, और यदि प्रस्तावित सजा उसके अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर है, तो वह स्वयं आवश्यक आदेश पारित कर सकता है, लेकिन यदि वह केवल दिया जा सकता है राज्यपाल द्वारा, आवश्यक आदेश पारित करने के लिए उसे कागजात अग्रेषित करने होते हैं। हालाँकि, इन आदेशों को पारित करने की शक्ति राज्यपाल को नियंत्रण की शक्ति नहीं देती है ताकि वह पूरे मामले की समीक्षा स्वयं कर सके ताकि यह पता लगाया जा सके कि उच्च द्वारा की गई सिफारिश कोर्ट सही है या नहीं. अनुशासनात्मक नियंत्रण को विभाजित नहीं किया जा सकता दो प्राधिकारियों, अर्थात् उच्च न्यायालय और राज्यपाल के बीच। उच्च न्यायालय की नियंत्रण शक्ति और राज्यपाल की शक्ति किसी न्यायिक अधिकारी को सेवा से बर्खास्त करने या हटाने के लिए यह कहकर सामंजस्य बिठाया जा सकता है कि दो प्रमुख दंडों में से एक को देने की प्रक्रिया का अर्ध-न्यायिक हिस्सा उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है, जबकि प्रशासनिक आदेश राज्यपाल द्वारा पारित किया जाता है। अदालत सज़ा का प्रस्ताव करेगी और राज्यपाल उसे लागू करेंगे. लेकिन उच्च न्यायालय की सिफारिश के अनुसार सेवा से हटाने या सेवा से बर्खास्तगी का आदेश पारित करने की शक्ति का प्रयोग करते हुए, राज्यपाल यह तय नहीं कर सकते कि अपराधी अधिकारी दोषी है या नहीं। उन्हें इस मामले में हाई कोर्ट का फैसला मानना होगा. राज्य सरकार अपनी पहल पर कोई आदेश पारित नहीं कर सकती. इसलिए सजा के लिए हाई कोर्ट की सिफारिश किसी न्यायिक अधिकारी को हटाना राज्य सरकार पर बाध्यकारी है और उसे ऐसी अनुशंसा के विपरीत कोई आदेश पारित करने का कोई अधिकार नहीं है।

माना गया, (बहुमत के अनुसार) कि संविधान का अनुच्छेद 311 लागू होता है केवल ऐसे मामलों में जिनमें नियुक्ति प्राधिकारी भी है नियंत्रण प्राधिकारी को सभी दंड देने का अधिकार है, चाहे छोटी हो या बड़ी और विभागीय जांच शुरू करने के लिए और सजा मिलने तक मामले को निपटाएं। के मामले में एक न्यायिक अधिकारी, अनुच्छेद 311 का एक सीमित अनुप्रयोग है, अर्थात द्वारा बर्खास्तगी या सेवा से हटाने के आदेश पारित किये जायेंगे राज्यपाल, लेकिन जांच उच्च न्यायालय को करनी होगी। मामला राज्यपाल को भेजा जाता है क्योंकि वही नियुक्ति कर रहे हैं प्राधिकरण को संविधान के अनुच्छेद 311(1) के तहत एक आदेश पारित करना होगा। उच्च

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

न्यायालय राज्यपाल के नाम से आदेश पारित नहीं कर सकता। बर्खास्तगी का आदेश पारित करने की शक्ति राज्यपाल को दी गई है

उच्च की अनुशंसा के अनुसार सेवा से हटाया जाना या हटाया जाना अदालत। अधीनस्थ न्यायपालिका पर पूर्ण अनुशासनात्मक नियंत्रण- उच्च न्यायालय में निहित है और उसे दोषी पाए गए अपराधी अधिकारी पर दंड का प्रस्ताव करने का अधिकार है उचित पूछताछ और उसके स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद। अनुच्छेद 311 इसे संविधान के अनुच्छेद 235 के अनुरूप माना जाना चाहिए और राज्यपाल को केवल आदेश पारित करना है, निर्णय नहीं देना है मामले पर. कोई भी अन्य व्याख्या न्यायिक अधिकारियों पर उच्च न्यायालय के पूर्ण नियंत्रण पर प्रभाव डालेगी विषम स्थिति उत्पन्न हो जायेगी. यह एक गतिरोध या गतिरोध पैदा करेगा और कार्यपालिका और उच्च न्यायालय के बीच टकराव।

माना गया, (प्रति गुजराल, जे. कॉन्ट्रा.) कि कार्डिनल सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए न्यायपालिका की स्वतंत्रता में सबसे आगे, नियंत्रण संविधान के अनुच्छेद 235 में जो परिकल्पना की गई है, उसे अवश्य माना जाना चाहिए विभागीय कार्यवाही शुरू करने और आयोजित करने की शक्ति सहित सभी मामलों में और सभी क्षेत्रों में पूर्ण, सिवाय इसके कि इसकी सीमा क्या है संविधान के अनुच्छेद 233, 234 और 311 द्वारा सीमित। शक्ति विभागीय कार्यवाही शुरू करने और संचालित करने के लिए बर्खास्तगी या सेवा से हटाने के अलावा सजा देने की शक्ति भी शामिल है, जिसका प्रयोग केवल संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत कार्य करने वाले राज्यपाल द्वारा किया जा सकता है। ऐसी शक्ति का प्रयोग करते समय राज्यपाल को उच्च न्यायालय द्वारा की गई जांच और लगाए जाने वाले दंड के संबंध में उसके द्वारा की गई सिफारिश के आधार पर आगे बढ़ना होता है, उच्च न्यायालय द्वारा अपराधी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद अधिकारी. ये सिफ़ारिशें उच्च न्यायालय द्वारा अपनी नियंत्रण शक्तियों का प्रयोग करते हुए की गई हैं। बर्खास्तगी या सेवा से हटाने की सजा देने के मामले में अंतिम निर्णय राज्यपाल द्वारा लिया जाना है, लेकिन अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचते समय राज्यपाल को उच्च न्यायालय की सिफारिश का उचित सम्मान करना चाहिए और सभी संभावित मामलों में कार्य करना चाहिए। इन सिफ़ारिशों के अनुसार.

हालाँकि, यदि किसी अलग मामले में राज्यपाल उच्च न्यायालय द्वारा अनुशंसित दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाता है, तो कानून में यह नहीं कहा जा सकता है कि राज्यपाल का आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना है। यदि राज्यपाल द्वारा दी गई सलाह से विचलन किया गया है उच्च न्यायालय द्वारा, यह किसी न्यायालय द्वारा जांच के लिए खुला हो सकता है बाहरी विचार ऐसे निर्णय का आधार होते हैं, लेकिन अधिकार क्षेत्र की कमी के आधार पर

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

निर्णय को चुनौती नहीं दी जा सकती। इस व्याख्या से उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण की शक्ति में कोई क्षरण नहीं होता है और इसका एकमात्र निहितार्थ यह है कि संविधान में परिकल्पित नियंत्रण और संतुलन का सिद्धांत भी लागू होगा। ऐसी व्याख्या उस उद्देश्य के अनुरूप है जिसे संविधान निर्माताओं ने ध्यान में रखा था अनुच्छेद 311 के तहत सेवाओं को सुरक्षा प्रदान करना होगा केवल तभी उपयुक्त है जब एक सामंजस्यपूर्ण निर्माण किया जाना हो संविधान के अनुच्छेद 235 और 311 और उनमें से कोई भी नहीं होना चाहिए दूसरे को निरर्थक बनाने की अनुमति दी गई।

माना गया, (प्रति गुजराल, जे.) कि संविधान का अनुच्छेद 311 केवल एक सरकारी कर्मचारी को बर्खास्त करने या हटाने से संबंधित है, चाहे वह किसी भी विंग या विभाग से संबंधित हो। अनुच्छेद 235 के संबंध में, अनुच्छेद 311 एक विशेष प्रावधान है जो उसमें उल्लिखित प्रमुख दंडों को लागू करने से संबंधित है। यदि कभी भी अनुच्छेद 235 और 311 के बीच कोई टकराव उत्पन्न होता है, तो अनुच्छेद की व्याख्या इस तरीके से करनी होगी ताकि अनुच्छेद 311 की प्रयोज्यता अप्रभावित रहे। अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय के पास नियंत्रण की शक्ति के बावजूद, बर्खास्तगी या निष्कासन की सजा लगाने का सवाल होने पर न्यायिक अधिकारी को नियुक्ति प्राधिकारी की संतुष्टि के लिए कारण बताने के उचित अवसर के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। सेवा से उत्पन्न होता है.अनुच्छेद 311 के तहत राज्यपाल जो आदेश पारित करता है वह महज एक औपचारिक आदेश नहीं है बल्कि उसके समक्ष रखी गई सामग्री की सराहना पर आधारित एक आदेश है जिसके द्वारा विभागीय जांच की गई है। उसे न्यायिक आदेश के आधार पर आदेश पारित करना होगा न कि केवल औपचारिक आदेश के आधार पर।

ऐसा आदेश पारित करते समय, चाहे इसे न्यायिक कहा जाए या प्रशासनिक, यदि राज्यपाल को अपने दिमाग का उपयोग किए बिना केवल उच्च न्यायालय की सिफारिश पर कार्य करना है तो ऐसा होगा। अनुच्छेद 311 के प्रावधान सरकारी कर्मचारी को उसकी सुरक्षा कवच से वंचित करते हैं। यह आर्टिकल को एक खाली शेल में बदल देगा।

माननीय की खंडपीठ द्वारा मामले को संदर्भित किया गया श्री न्यायमूर्ति डी.के. महाजन और माननीय श्री न्यायमूर्ति प्रेम चंद जै 16 फरवरी, 1972 को एक महत्वपूर्ण निर्णय के लिए पूर्ण पीठ के समक्ष मामले में शामिल कानून का प्रश्न.

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

पूर्ण पीठ में माननीय श्री न्यायमूर्ति बाल राज तुली, माननीय श्री न्यायमूर्ति ए.डी. कोशल, माननीय श्री न्यायमूर्ति एस.एस. संधावालिया, माननीय श्री न्यायमूर्ति प्रेम चंद जैन और, माननीय श्री न्यायमूर्ति शामिल हैं। मन मोहन सिंह गुजराल ने अंततः 13 मार्च, 1975 को मामले का फैसला किया।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत याचिका
प्रार्थना करना: -

(ए) याचिकाकर्ता को हरियाणा सिविल सेवा (न्यायिक) के सदस्य के रूप में उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी-सह मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के रूप में तैनात करने के लिए उत्तरदाताओं 1 और 2 को निर्देश देने वाले परमादेश की प्रकृति की रिट जारी की जाए।

(बी) उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता को निलंबन के तहत रहने की अवधि के वेतन सहित पूरा वेतन देने का निर्देश देने वाले परमादेश की प्रकृति की एक रिट जारी की जाए।

(सी) उत्तरदाताओं 1 और 2 को निर्देश दिया जाए कि याचिकाकर्ता को अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश के उच्च पद पर पदोन्नति के लिए उस तारीख से पूर्वव्यापी प्रभाव से विचार किया जाए जब उससे कनिष्ठ व्यक्ति को उस पद पर पदोन्नत किया गया था।

(डी) कि इस मामले की परिस्थितियों के तहत माननीय न्यायालय द्वारा उचित समझा जाने वाला कोई अन्य रिट या आदेश जारी किया जाए।

(ई) कि मामले का रिकॉर्ड मंगवाने का आदेश दिया जाए।

(एफ) कि याचिका की लागत याचिकाकर्ता को दी जाए।

एच. एल. सिब्बल, वरिष्ठ अधिवक्ता, कुलदीप सिंह, जी. सी. गर्ग,
याचिकाकर्ता की ओर से वकील एस. सी. सिब्बल और आर. सी. सेतिया।

जे.एन.कौशल, महाधिवक्ता, हरियाणा, अशोक भान के साथ,
प्रतिवादी संख्या 3 के लिए वकील।

आनंद स्वरूप, वरिष्ठ अधिवक्ता और आर. दत्त, के.जी. चौधरी, और सी. पी. सपरा उत्तरदाता

निर्णय

तुली, जे.-याचिकाकर्ता, श्री बलदेव राज गुलियानी को जून, 1954 में आयोजित प्रतियोगी परीक्षा में सफलता के परिणामस्वरूप पंजाब सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) में भर्ती किया गया था। उन्हें अधीनस्थ न्यायाधीश, चतुर्थ श्रेणी के रूप में नियुक्त किया गया था। 27 फरवरी, 1956 को, और 1957 में उन्हें अधीनस्थ न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी की शक्तियां प्रदान की गईं। 26 अक्टूबर, 1957 से उन्हें पंजाब सिविल सेवा (न्यायिक) के सदस्य के रूप में पुष्टि की गई, - 17 मार्च, 1961 के आदेश के अनुसार .उन्हें फरवरी से दक्षता बार पार करने की अनुमति दी गई थी 27, 1964, - 2 फरवरी 1965 के आदेश द्वारा।

(2) याचिकाकर्ता को 28 मई, 1964 से 18 मई, 1965 तक अधीनस्थ न्यायाधीश-सह-मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, अमलोह, जिला पटियाला के रूप में तैनात किया गया था और वहां के बार एसोसिएशन ने उनकी ईमानदारी के खिलाफ कुछ शिकायतें उच्च को भेजी थीं। न्यायालय ने 11 मई, 1965 को पत्र द्वारा तथ्यान्वेषी जांच के लिए श्री गुरबचन सिंह, जिला न्यायाधीश को सौंपा था। श्री गुरबचन सिंह की रिपोर्ट पर, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यह विभागीय जांच के लिए एक उपयुक्त मामला था। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों की जांच के लिए श्री प्रीतम सिंह पट्टर (तत्कालीन जिला न्यायाधीश, संगरूर, और अब इस न्यायालय के एक माननीय न्यायाधीश) को 21 जुलाई, 1966 को एक जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता को उच्च न्यायालय के आदेश पर राज्य सरकार ने जांच लंबित रहने तक निलंबित कर दिया था। विद्वान जांच अधिकारी ने इस न्यायालय को अपनी रिपोर्ट सौंपी और उन्हें एक को छोड़कर सभी आरोपों का दोषी पाया। उस रिपोर्ट के अवलोकन पर, उच्च न्यायालय ने एक राय बनाई कि यह एक उपयुक्त मामला था जिसमें याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने की सजा दी जानी चाहिए। नतीजतन, मामला संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत कारण बताओ नोटिस देने के लिए राज्य सरकार को भेजा गया था। याचिकाकर्ता को राज्य सरकार द्वारा 13 मार्च, 1967 को नोटिस जारी किया गया था, यह बताने के लिए कि उस पर सेवा से हटाने का जुर्माना क्यों नहीं लगाया जाना चाहिए। यह नोटिस राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय की अनुशंसा पर जारी किया गया था, जिस पर याचिकाकर्ता ने 20 अप्रैल, 1967 को उच्च न्यायालय के माध्यम से अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। उच्च न्यायालय ने उस स्पष्टीकरण पर विचार किया और विचार व्यक्त किया कि यह संतोषजनक नहीं था और सिफारिश की कि याचिकाकर्ता को सेवा से हटा दिया जाना चाहिए। राज्य सरकार ने मामले की जांच की और उच्च न्यायालय के विचारों और उसके द्वारा की गई सिफारिश से सहमत थी। हालाँकि, सरकार ने मामले को सलाह के लिए हरियाणा लोक सेवा आयोग को भेज दिया क्योंकि यह माना गया कि संविधान के अनुच्छेद 320(3)(सी) के प्रावधानों और संबंधित नियमों के मद्देनजर आयोग को ऐसा संदर्भ आवश्यक था।

हरियाणा लोक सेवा आयोग ने सलाह दी कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाया गया है और उसे बरी कर दिया जाना चाहिए। राज्य सरकार ने एक बार फिर आयोग के विचारों के आलोक में मामले की जांच की और उसकी सलाह को स्वीकार करने का फैसला किया कि याचिकाकर्ता को दोषमुक्त कर दिया जाना चाहिए। हालाँकि, आयोग की सलाह को परीक्षण या टिप्पणी के लिए उच्च न्यायालय को नहीं भेजा गया था और याचिकाकर्ता को तत्काल प्रभाव से सेवा में बहाल करने का आदेश 24 अगस्त, 1968 को राज्य सरकार द्वारा जारी किया गया था, जिसकी एक प्रति आयोग को भेजी गई थी। इस न्यायालय के रजिस्ट्रार को सूचना एवं आवश्यक कार्रवाई हेतु। यह आदेश इस प्रकार है:-

"हरियाणा के राज्यपाल श्री बी.आर. गुलियानी, एच.सी.एस., (न्यायिक शाखा) को निलंबन के तहत तत्काल प्रभाव से सेवा में बहाल करते हुए प्रसन्न हैं। निलंबन अवधि के दौरान उनके वेतन और भत्ते के संबंध में आदेश अलग से जारी किए जाएंगे।

एक डी.ओ. इस न्यायालय के रजिस्ट्रार को श्री एच. वी. गोस्वामी, आई.ए.एस. का 24 अगस्त, 1968 का पत्र भी प्राप्त हुआ था। (संभवतः सेवा विभाग, हरियाणा सरकार के सचिव या उप सचिव), इस प्रकार पढ़ें: -

"मैं माननीय उच्च न्यायालय के पत्र संख्या 671/आरएचसी, दिनांक 31 मई, 1967, और उसके बाद के पत्राचार संख्या 85/आरएचसी, दिनांक 24 जनवरी, 1968 का उल्लेख करना चाहता हूं और यह कहना चाहता हूं कि मामले को सलाह के लिए हरियाणा लोक सेवा आयोग को भेजा गया था। आयोग ने सिफारिश की है कि श्री गुलियानी को सभी आरोपों से पूरी तरह बरी किया जा सकता है। राज्य सरकार ने इस मामले में आयोग की सलाह मानने का फैसला किया है और श्री गुलियानी को सेवा में बहाल करने के संबंध में आदेश अलग से जारी किये जा रहे हैं. मैं अनुरोध करना चाहता हूं कि माननीय उच्च न्यायालय श्री गुलियानी को सेवा में बहाल करने के प्रश्न पर कृपया विचार करें।

हालाँकि, उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता को कोई पोस्टिंग आदेश जारी नहीं किया, क्योंकि उसकी राय थी कि यह आदेश कानूनी नहीं था क्योंकि यह लोक सेवा आयोग की सलाह पर पारित किया गया था, जिससे इस मामले में परामर्श नहीं किया जा सका। सरकार को अपनी अनुशंसा के आलोक में आदेश पारित करना चाहिए था. परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय ने सरकार से याचिकाकर्ता को बहाल करने के अपने आदेश की समीक्षा करने का अनुरोध किया लेकिन सरकार ने उस सुझाव पर कोई कार्रवाई नहीं की। याचिकाकर्ता को बहाली के आदेश के बाद की अवधि के लिए किसी भी वेतन की अनुमति नहीं दी गई थी, सिवाय निर्वाह भत्ते के, जो उसे निलंबन की अवधि के

दौरान महालेखाकार द्वारा इस आधार पर भुगतान किया जा रहा था कि बहाली के बाद उसे नियुक्त नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा पद और जब तक ऐसा नहीं किया जाता, उसे कोई वेतन निकालने की अनुमति नहीं दी जा सकती। उच्च न्यायालय ने नियुक्ति आदेश देने से इनकार कर दिया क्योंकि उसके विचार में वह अभी भी निलंबित थे और उन्हें वैध रूप से बहाल नहीं किया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता ने 12 जुलाई, 1971 को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत वर्तमान याचिका दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित राहतें भी शामिल थीं: -

(ए) कि प्रतिवादी 1 और 2 को याचिकाकर्ता को उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी-सह-मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, हरियाणा सिविल सेवा (न्यायिक) के सदस्य के रूप में तैनात करने का निर्देश देने वाले परमादेश की प्रकृति में रिट जारी की जाए;

(बी) उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता को निलंबन के तहत रहने की अवधि के वेतन सहित पूरा वेतन देने का निर्देश देने वाले परमादेश की प्रकृति में एक रिट जारी की जाए;

(सी) उत्तरदाताओं 1 और 2 को निर्देश दिया जाए कि याचिकाकर्ता को अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश के उच्च पद पर पदोन्नति के लिए उस तारीख से पूर्वव्यापी प्रभाव से विचार किया जाए जब उससे कनिष्ठ व्यक्ति को उस पद पर पदोन्नत किया गया था;

(डी) कोई अन्य रिट या आदेश जिसे माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों के तहत उचित समझे, जारी किया जाए;

(3) यह याचिका 15 फरवरी 1972 को इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष सुनवाई के लिए आई और खंडपीठ ने राय व्यक्त की कि याचिका में उठाए गए बिंदु काफी महत्वपूर्ण थे और निर्णय, किसी न किसी तरह, इसका बहुत दूरगामी प्रभाव है और इसलिए, यदि यह याचिका पांच न्यायाधीशों की एक बड़ी पीठ द्वारा आधिकारिक फैसले के लिए तय की जाती तो यह उचित होता। उस संदर्भ आदेश के अनुसरण में यह याचिका निर्णय हेतु इस पीठ के समक्ष आयी है।

(4) यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि याचिकाकर्ता ने प्राप्त किया 5 जनवरी 1975 को 55 वर्ष की आयु थी, और 16 दिसंबर 1974 को उन्हें एक नोटिस जारी किया गया था, जिसमें उन्हें सूचित किया गया था कि नोटिस प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की समाप्ति के बाद उन्हें सेवा से सेवानिवृत्त माना जाएगा। पंजाब सिविल सेवा नियम, खंड II के नियम 5.32(सी) के तहत। यह नोटिस हाईकोर्ट की अनुशंसा पर राज्य सरकार ने जारी किया था. याचिकाकर्ता ने उस नोटिस को चुनौती नहीं दी है और उसे स्वीकार कर लिया है।

(5) तर्कों पर चर्चा करने से पहले, जांच अधिकारी के निष्कर्षों से सहमत होकर उन आरोपों को निर्धारित करना उचित लगता है जिनके लिए याचिकाकर्ता को उच्च न्यायालय द्वारा दोषी पाया गया था। ये आरोप थे:-

1. (ए) अमलोह में अपनी पोस्टिंग के दौरान, वह दीवानी और फौजदारी दोनों मामलों में तुरंत फैसला नहीं कर रहे थे, बल्कि सबूत दर्ज होने और दलीलें सुनने के बाद भी समय-समय पर उन्हें अनुचित तरीके से स्थगित कर रहे थे। फैसले की घोषणा के लिए जिससे एकमात्र निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि वह उक्त मामलों के पक्षों को उनसे संपर्क करने का अवसर दे रहा था।

(बी) वह जानबूझकर अपने काम के मासिक विवरण के साथ इस आशय का गलत प्रमाण पत्र दे रहा था कि साक्ष्य समाप्त होने के तीस दिनों के भीतर सभी मामलों का फैसला किया गया था।

(2) लागत देने के मामले में, उन्होंने उचित न्यायिक विवेक का प्रयोग नहीं किया, क्योंकि उन्होंने लापरवाही से और कभी-कभी विशेष पक्षों का पक्ष लेने के लिए लागतें तय कीं।

(3) उन्होंने जमानत देने के मामले में अपने आधिकारिक पद और शक्ति का दुरुपयोग किया। कुछ मामलों में उन्होंने अग्रिम जमानत दे दी, हालांकि वह ऐसा करने में सक्षम नहीं थे।

(4) वह सिविल प्रक्रिया संहिता और आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों और उच्च न्यायालय के नियमों और आदेशों में निहित निर्देशों के अनुसार साक्ष्य दर्ज नहीं कर रहा था।

अमलोह की अदालत में सबूत नहीं थे। कानून द्वारा अपेक्षित के रूप में उसके द्वारा दर्ज किया गया था, लेकिन नागरिक और आपराधिक मामलों में एक साथ, उसके रीडर द्वारा पार्टियों के वकील की मदद से, और दूसरी तरफ, स्टेनो-टाइपिस्ट और एक अन्य द्वारा दर्ज किया जाता था। अभियोजन पक्ष के पुलिस उपनिरीक्षक और अभियुक्त के वकील की मदद से उनके न्यायालय के अधिकारी। जब साक्ष्य उपरोक्त तरीके से दर्ज किया जा रहा हो तो वह स्वयं अखबार पढ़ते थे, सोते थे या कोई अन्य काम करते थे।

आरोप-पत्र के साथ दिए गए आरोपों के विवरण में, आरोपों में संदर्भित नागरिक और आपराधिक मामलों का विवरण दिया गया था।

(6) इस मामले में निर्णय के लिए कानून के निम्नलिखित बिंदु सामने आते हैं:-

(1) क्या सरकार उच्च न्यायालय की सिफारिश से बाध्य थी कि याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने की सजा दी जानी चाहिए और उसे उस सिफारिश के विपरीत कोई आदेश पारित करने का कोई अधिकार नहीं था?

(2) क्या राज्य सरकार के लिए हरियाणा लोक सेवा आयोग से परामर्श करना और उसके द्वारा दी गई सलाह से प्रभावित होना आवश्यक था? यदि नहीं, तो क्या दोषमुक्ति एवं बहाली का आदेश लोक सेवा आयोग की सलाह पर पारित होने के कारण शून्य है?

मैं इन बिंदुओं पर सिलसिलेवार ढंग से विचार करूंगा।

याचिकाकर्ता राज्य की न्यायिक सेवा से संबंधित है और संविधान के अनुच्छेद 234 में प्रावधान है:

“234. किसी राज्य की न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों के अलावा अन्य व्यक्तियों की नियुक्तियाँ राज्य के राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग और संबंध में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद उनके द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार की जाएंगी। ऐसे राज्य के लिए।”

शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य (1) में, यह रहा है पैरा 88 में कहा गया है कि "अधीनस्थ न्यायिक सेवा के सदस्यों की नियुक्ति के साथ-साथ उन्हें हटाना राज्यपाल की एक कार्यकारी कार्रवाई है जिसे संविधान के प्रावधानों के अनुसार मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर किया जाता है" और व्यक्तियों की नियुक्तियाँ और निष्कासन कार्यपालिका के संवैधानिक प्रमुख के रूप में राज्यपाल द्वारा मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर की जाती है। याचिकाकर्ता के वकील द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत बर्खास्तगी या सेवा से हटाने की सजा केवल सरकार द्वारा दी जा सकती है और वह भी जांच करने और कारण बताओ नोटिस जारी करने के बाद ही दी जा सकती है। प्रस्तावित सज़ा का प्रावधान.

पंजाब सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) नियम भी सरकार को सेवा से निष्कासन का दंड देने के लिए दंड प्राधिकारी के रूप में निर्धारित करते हैं जो भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्य नहीं होता है और सेवा से बर्खास्तगी जो आमतौर पर भविष्य के रोजगार के लिए अयोग्य होती है। संविधान और नियमों के इन प्रावधानों के आधार पर, यह प्रस्तुत किया गया है कि सरकार के पास सेवा से हटाने या सेवा से बर्खास्त करने की सजा देने की शक्ति थी और यदि उसने याचिकाकर्ता को सभी आरोपों से मुक्त कर दिया, तो आदेश पारित किया गया था अधिकार क्षेत्र के साथ और उच्च न्यायालय इस पर कार्रवाई करने से इनकार नहीं कर सकता और याचिकाकर्ता को पोस्टिंग आदेश जारी करना चाहिए। इसलिए, यह तय किया जाना है कि याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने के लिए 24 अगस्त, 1968 को राज्यपाल द्वारा पारित आदेश एक कानूनी आदेश था और उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी था।

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

(7) संविधान का अनुच्छेद 235, जो उच्च न्यायालय में अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण का प्रावधान करता है, निम्नलिखित शब्दों में है: -

"अनुच्छेद 235. किसी राज्य की न्यायिक सेवा से संबंधित और जिला न्यायाधीश के पद से कमतर कोई भी पद धारण करने वाले व्यक्तियों की पोस्टिंग और पदोन्नति और छुट्टी देने सहित जिला अदालतों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण निहित होगा। उच्च न्यायालय में, लेकिन इस लेख में कुछ भी नहीं माना जाएगा ऐसे किसी भी व्यक्ति से अपील के किसी भी अधिकार को छीन लेना, जो उसके पास उसकी सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले कानून के तहत हो सकता है या उच्च न्यायालय को ऐसे कानून के तहत निर्धारित उसकी सेवा की शर्तों के अनुसार उसके साथ व्यवहार करने के लिए अधिकृत करने के रूप में हो सकता है।"

इस अनुच्छेद के दायरे और दायरे पर सर्वोच्च द्वारा विचार किया गया पश्चिम बंगाल राज्य बनाम नृपेंद्र नाथ बागची में न्यायालय (2), वहीं न्यायपालिका के अलग होने के इतिहास का पता लगाने के बाद

.

---

(2) ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 447 = (1966) 1 एस.सी.आर. 771

कार्यपालिका से और इसमें प्रयुक्त 'नियंत्रण' शब्द का अर्थ संविधान के अनुच्छेद 235, उनके आधिपत्य ने देखा:

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

“जब संविधान का मसौदा तैयार किया जा रहा था, तो दुर्भाग्य से 1935 के अधिनियम द्वारा की गई प्रगति को नज़रअंदाज कर दिया गया। संविधान के मसौदे में अधीनस्थ न्यायपालिका के संबंध में विशेष प्रावधानों का कोई उल्लेख नहीं किया गया, यहां तक कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 द्वारा बनाए गए प्रावधानों के समान भी नहीं। यदि ऐसा रहता तो न्यायिक सेवाएँ भारत में सेवाओं से संबंधित भाग XIV के अंतर्गत आतीं। एक संशोधन, सौभाग्य से, स्वीकार कर लिया गया और अनुच्छेद 233 से 237 को शामिल किया गया। इन अनुच्छेदों को अध्याय में नहीं रखा गया था सेवाएँ लेकिन उच्च न्यायालयों के संबंध में प्रावधानों के तुरंत बाद। ये लेख भारत सरकार अधिनियम की संबंधित धाराओं से थोड़ा आगे चले गए। उन्होंने जिला अदालतों और उनके अधीनस्थ अदालतों का 'नियंत्रण' उच्च न्यायालयों में निहित कर दिया और मुख्य प्रश्न यह है कि 'नियंत्रण' शब्द का क्या अर्थ है। उच्च न्यायालय ने माना है कि 'नियंत्रण' शब्द का अर्थ न केवल अदालतों के कामकाज का सामान्य पर्यवेक्षण है, बल्कि इसमें पीठासीन न्यायाधीशों, यानी जिला न्यायाधीश और उनके अधीनस्थ न्यायाधीशों का अनुशासनात्मक नियंत्रण भी शामिल है। यह वह निष्कर्ष है जिसे विभिन्न आधारों पर हमारे सामने चुनौती दी गई है।

पश्चिम बंगाल सरकार की ओर से उपस्थित श्री बी. स्फेन का तर्क है कि 'नियंत्रण' शब्द को एक प्रतिबंधित अर्थ दिया जाना चाहिए। उन्होंने इसका निष्कर्ष (ए) स्वयं अनुच्छेद 235 को पढ़ने के सुझाव पर और (बी) संविधान के भाग XIV के साथ अध्याय VI के प्रावधानों की तुलना पर निकाला है। हम इन दोनों तर्कों की अलग-अलग जांच करेंगे क्योंकि वे अलग-अलग उपचार की बात स्वीकार करते हैं। पहला तर्क यह है कि 'नियंत्रण' का अर्थ केवल अदालतों के दिन-प्रतिदिन के कामकाज पर नियंत्रण है और अनुच्छेद 235 के शब्दों 'जिला न्यायालयों' और 'उनके अधीनस्थ न्यायालयों' पर जोर दिया गया है। यह बताया गया है कि 'जिला न्यायाधीश' और 'उसके अधीनस्थ न्यायाधीश' अभिव्यक्तियों का उपयोग नहीं किया जाता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि पदधारियों का उल्लेख किया गया था तो नियंत्रण का अर्थ अनुशासनात्मक नियंत्रण हो सकता है, लेकिन जब 'न्यायालय' शब्द का उपयोग किया जाता है तो नहीं। अंत में, यह तर्क दिया गया है कि सेवा की शर्तें अनुच्छेद 235 द्वारा परिकल्पित 'नियंत्रण' से बाहर हैं क्योंकि सेवा की शर्तें जिला न्यायाधीश के मामले में राज्यपाल द्वारा निर्धारित की जानी हैं और जिला

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

न्यायाधीश के अधीनस्थ न्यायाधीशों के मामले में राज्यपाल द्वारा निर्धारित की जानी हैं। राज्य लोक सेवा आयोग और उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद राज्यपाल द्वारा इस संबंध में नियम बनाये गये।

हमें यह निर्माण स्वीकार नहीं है. 'नियंत्रण' शब्द को संविधान में परिभाषित ही नहीं किया गया है। भाग XIV में जो संघ और राज्यों के अधीन सेवाओं से संबंधित है, 'अनुशासनात्मक नियंत्रण' या 'अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार' शब्दों का बिल्कुल भी उपयोग नहीं किया गया है। ऐसा नहीं सोचा जाना चाहिए कि सेवाओं के अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार पर विचार नहीं किया गया है। इस संदर्भ में, हमारे निर्णय में, 'नियंत्रण' शब्द में अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार शामिल होना चाहिए। वास्तव में, इस शब्द को कला के शब्द के रूप में उपयोग किया जा सकता है क्योंकि सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमों में 'नियंत्रण' शब्द का उपयोग किया जाता है और एकमात्र नियम जो वैध रूप से 'नियंत्रण' शब्द के अंतर्गत आ सकते हैं वे अनुशासनात्मक हैं। नियम। इसके अलावा, जैसा कि हम पहले ही दिखा चुके हैं, इन अनुच्छेदों को लागू करने के पीछे का इतिहास बताता है कि 'नियंत्रण' एक उद्देश्य को पूरा करने के लिए उच्च न्यायालय में निहित था, अर्थात्, अधीनस्थ न्यायपालिका की स्वतंत्रता की सुरक्षा और जब तक इसमें अनुशासनात्मक शामिल न हो। नियंत्रण भी, वस्तु ही कुंठित हो जाएगी। निर्माण के लिए यह सहायता स्वीकार्य है क्योंकि किसी कानून का अर्थ जानने के लिए वैध रूप से कानून की पूर्व स्थिति का सहारा लेना पड़ सकता है,

बुराई को दूर करने का प्रयास किया गया और वह प्रक्रिया जिसके द्वारा कानून विकसित किया गया। जैसा कि हमने देखा है, 'नियंत्रण' शब्द का प्रयोग पहली बार संविधान में किया गया था और इसके साथ 'वेस्ट' शब्द भी शामिल है जो एक मजबूत शब्द है। इससे पता चलता है कि उच्च न्यायालय को न्यायपालिका पर नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक बना दिया गया है। इसलिए, नियंत्रण, न केवल अदालत के दिन-प्रतिदिन के कामकाज को व्यवस्थित करने की शक्ति है, बल्कि पीठासीन न्यायाधीश पर अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार पर भी विचार करता है। अनुच्छेद 227 उच्च न्यायालय को इन अदालतों पर अधीक्षण देता है और उच्च न्यायालय को रिटर्न आदि मांगने में सक्षम बनाता है। अनुच्छेद 235 में 'नियंत्रण' शब्द की सामग्री अलग होनी चाहिए। इसमें मात्र अधीक्षण के अलावा कुछ और भी शामिल है। यह न्यायाधीशों के आचरण और अनुशासन पर नियंत्रण है। यह निष्कर्ष आगे है उसी दिशा में स्पष्ट रूप से इशारा करने वाले दो अन्य संकेतों से इसे बल मिला है। पहला यह है कि यदि सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले कानून में ऐसा प्रावधान किया गया है तो उच्च न्यायालय का आदेश अपील के अधीन है और यह आवश्यक रूप से अनुशासनात्मक रूप से पारित आदेश को इंगित करता है। क्षेत्राधिकार। दूसरे, शब्द यह हैं कि उच्च न्यायालय सेवा के नियमों के अनुसार न्यायाधीश के साथ 'सौदा' करेगा और 'सौदा' शब्द भी अनुशासनात्मक न कि केवल प्रशासनिक क्षेत्राधिकार की ओर इशारा करता है।

अनुच्छेद 233 और 235 में दो अलग-अलग शक्तियों का उल्लेख है।

पहली है व्यक्तियों की नियुक्ति, उनकी पोस्टिंग और पदोन्नति की शक्ति और दूसरी है नियंत्रण की शक्ति। जिला न्यायाधीशों के मामले में, व्यक्तियों की नियुक्ति, पोस्टिंग और पदोन्नति राज्यपाल द्वारा की जाती है लेकिन जिला न्यायाधीश पर नियंत्रण उच्च न्यायालय का होता है। हम इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं कि इस्तेमाल किया गया शब्द 'जिला अदालत' है क्योंकि बाकी लेख स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि 'न्यायालय' शब्द का इस्तेमाल न केवल अदालत बल्कि पीठासीन न्यायाधीश को भी दर्शाने के लिए किया जाता है। अनुच्छेद 235 का उत्तरार्द्ध भाग उस व्यक्ति की बात करता है जो पद संभालता है। जिला न्यायाधीश के अधीनस्थ न्यायिक सेवा के मामले में नियुक्ति राज्य लोक सेवा आयोग और उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद बनाए जाने वाले नियमों के अनुसार राज्यपाल द्वारा की जानी है लेकिन पदोन्नति पोस्ट करने की शक्ति और छुट्टी देना और अदालतों का नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित है। जो निहित है उसमें अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार भी शामिल है। यदि अनुशासनात्मक शक्तियों के साथ न हो तो नियंत्रण बेकार है। यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि अनुशासनहीनता के हर मामले में उच्च न्यायालय सरकार या राज्यपाल के पास जाएगा चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो और जिसमें बर्खास्तगी या निष्कासन की सजा की भी आवश्यकता न हो। इन लेखों से पता चलता है कि उच्च न्यायालय में 'नियंत्रण' निहित करने से अधीनस्थ न्यायपालिका की स्वतंत्रता को ध्यान में रखा गया था। यह आंशिक रूप से भारत सरकार अधिनियम, 1935 में हासिल किया गया था, लेकिन इसे वर्तमान संविधान के प्रारूपकारों द्वारा पूरी तरह से प्रभावी बनाया गया था। यह निर्माण संविधान के अनुच्छेद 50 में निदेशक सिद्धांतों के अनुरूप भी है जिसमें लिखा है:

'50. राज्य न्यायपालिका को अलग करने के लिए कदम उठाएगा राज्य की सार्वजनिक सेवाओं में कार्यपालिका"

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

पश्चिम बंगाल राज्य के विद्वान वकील ने संविधान के अनुच्छेद 309 से 311 का हवाला दिया और प्रस्तुत किया कि अनुच्छेद 311 के तहत एक सरकारी कर्मचारी की बर्खास्तगी और निष्कासन नियुक्ति प्राधिकारी में निहित है और इसलिए, ऐसे आदेश न्यायिक के सदस्यों के लिए योग्य हैं। सेवा केवल राज्य सरकार द्वारा की जा सकती थी, जिसका अर्थ था कि उच्च न्यायालय का अनुशासनात्मक नियंत्रण पूर्ण नहीं था। विद्वान वकील ने यह भी तर्क दिया कि सरकार की यह शक्ति यह भी निर्धारित करती है कि जांच राज्यपाल या सरकार द्वारा या उनके निर्देशों के तहत की जानी चाहिए। अपने तर्क को समर्थन देने के लिए, उन्होंने अनुच्छेद 311 के खंड (2) के प्रावधानों (बी) और (सी) का उल्लेख किया, लेकिन उनके आधिपत्य ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ तर्क को खारिज कर दिया:

"यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि राज्यपाल जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है और राज्यपाल ही उन्हें बर्खास्त या हटा सकता है। यह उच्च न्यायालय के नियंत्रण में हस्तक्षेप नहीं करता है। इसका मतलब केवल यह है कि उच्च न्यायालय जिला न्यायाधीशों को नियुक्त या बर्खास्त या हटा नहीं सकता है। उसी प्रकार उच्च न्यायालय दो प्रावधानों द्वारा प्रदत्त विशेष क्षेत्राधिकार का उपयोग नहीं कर सकता है। उच्च न्यायालय यह निर्णय नहीं कर सकता कि जिला न्यायाधीश को कारण बताने का अवसर देना उचित रूप से व्यावहारिक नहीं है या राज्य की सुरक्षा के हित में ऐसा अवसर देना समीचीन नहीं है। यह तो राज्यपाल ही तय कर सकते हैं. यह कि कुछ शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल द्वारा किया जाना है, न कि उच्च न्यायालय द्वारा, यह आवश्यक नहीं है कि उच्च न्यायालयों से अन्य शक्तियाँ छीन ली जाएँ। अन्य निहितार्थों को जन्म दिए बिना परन्तुकों को उनका पूर्ण प्रभाव दिया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि यदि दो प्रावधानों के तहत विशेष शक्तियों के प्रयोग के लिए कोई मामला उठता है, तो उच्च न्यायालय को मामले को राज्यपाल पर छोड़ देना चाहिए। इस संबंध में हम संयोगवश यह जोड़ सकते हैं कि हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिला न्यायाधीशों के खिलाफ जांच के संबंध में इन विशेष शक्तियों का प्रयोग करते समय, राज्यपाल हमेशा मामले में उच्च न्यायालय की राय का ध्यान रखेंगे। ऐसा राज्य में जांच प्राधिकारी कोई भी हो, ऐसा ही होगा। लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि उच्च न्यायालय को इससे अधिक जांच नहीं करनी चाहिए कि राज्यपाल को व्यक्तिगत रूप से जांच करनी चाहिए।

इसलिए, अनुच्छेद 311 में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो बाध्य करता हो निष्कर्ष यह है कि हाई कोर्ट को अधिकार क्षेत्र से बाहर कर दिया गया है यदि अनुच्छेद 235 में यह शक्ति निहित हो तो जांच कराना। हमारे निर्णय में, जो नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित है, वह जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति (बर्खास्तगी और हटाने सहित) और पोस्टिंग और पदोन्नति के मामले में पूर्ण नियंत्रण केवल राज्यपाल की शक्ति के अधीन है। उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण के प्रयोग के अंतर्गत, उच्च न्यायालय जांच कर सकता है, सेवा की शर्तों के अधीन, बर्खास्तगी या निष्कासन के अलावा अन्य दंड दे सकता है, सेवा की शर्तों द्वारा प्रदान किए जाने पर अपील का अधिकार दे सकता है, और अनुच्छेद 311 के खंड (2) द्वारा अपेक्षित कारण बताने का अवसर देना, जब तक कि उस खंड के प्रावधान (बी) और (सी) के तहत कार्य करने वाले राज्यपाल द्वारा ऐसा अवसर प्रदान नहीं किया जाता है। इस मामले में उच्च न्यायालय ही जांच कर सकता था। अन्यथा धारण करना उस नीति को उलटना होगा जो इस दिशा में दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ी है।"

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

"इन टिप्पणियों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय अकेले न्यायिक सेवा के सदस्य के खिलाफ जांच कर सकता है और सरकार ऐसा नहीं कर सकती है। इस मामले को आगे समशेर सिंह के मामले (1) (सुप्रा) में स्पष्ट किया गया है, जिसमें रिपोर्ट के पैरा 78 में निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियां पाई जानी हैं: - "उच्च न्यायालय ने उन कारणों के लिए सरकार से अनुरोध किया है जो नहीं बताए गए हैं सतर्कता निदेशक करेंगे जांच यह वास्तव में अजीब है कि उच्च न्यायालय, जिसका अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण था, ने सरकार से सतर्कता विभाग के माध्यम से जांच कराने को कहा। अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्य न केवल उच्च न्यायालय के नियंत्रण में हैं, बल्कि उच्च न्यायालय की देखरेख और हिरासत में भी हैं। उच्च न्यायालय अपने नियंत्रण को बनाए रखने के कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहा। उच्च न्यायालय द्वारा अनुरोध सतर्कता निदेशक के माध्यम से जांच कराना आत्मत्याग का कार्य था। राज्य का यह तर्क कि उच्च न्यायालय चाहता था कि सरकार संतुष्ट हो, मामले को और बदतर बना देती है। राज्यपाल उच्च न्यायालय की सिफारिश पर कार्य करेंगे। यही व्यापक बात है अनुच्छेद 235 का आधार। उच्च न्यायालय को अधिमानतः जिला न्यायाधीशों के माध्यम से जांच करानी चाहिए थी। अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्य न केवल अनुशासन के लिए बल्कि गरिमा के लिए भी उच्च न्यायालय की ओर देखते हैं। उच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 235 की पूरी तरह से अवहेलना की। सरकार से सतर्कता निदेशक के माध्यम से जांच करने का अनुरोध करके।"

इन टिप्पणियों के अनुसार, अकेले उच्च न्यायालय को अधीनस्थ न्यायपालिका के एक सदस्य के खिलाफ जांच करनी है और इस दृष्टिकोण को श्री एन.एस. राव बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (3) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दोहराया गया है। इन आधारों से तार्किक रूप से यह पता चलता है कि जांच अधिकारी को अपनी रिपोर्ट उच्च न्यायालय को सौंपनी है, जिसे यह पता लगाने के लिए उस पर विचार करना होगा कि जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष सही हैं या नहीं और क्या कोई सजा दी जानी है। दोषी अधिकारी पर. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि केवल उच्च न्यायालय ही निंदा करने, वेतन वृद्धि या पदोन्नति को रोकने, दक्षता बाधा पर रोक लगाने, निचले पद या समयमान पर कटौती करने या समयमान में निचले स्तर पर भेजने सहित दंड देने के लिए सक्षम प्राधिकारी है। और लापरवाही या आदेश के उल्लंघन के कारण सरकार को हुई किसी भी आर्थिक हानि की पूरी या आंशिक भरपाई वेतन से की जाएगी। यदि उच्च न्यायालय, जांच अधिकारी के निष्कर्षों की समीक्षा पर, यह राय रखता है कि इनमें से एक दंड दिया जाना चाहिए, तो वह सरकार के संदर्भ के बिना आवश्यक आदेश पारित कर सकता है, लेकिन यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि सेवा से निष्कासन या सेवा से बर्खास्तगी की सजा की मांग की जाती है, तो उच्च

न्यायालय के लिए दो पाठ्यक्रम खुले हो सकते हैं, अर्थात्, (1) उच्च न्यायालय स्वयं दोषी अधिकारी को यह कहते हुए नोटिस जारी कर सकता है कि यह अस्थायी रूप से उसकी राय है कि सजा दी जाए सेवा से निष्कासन या सेवा से बर्खास्तगी की कार्रवाई की जानी चाहिए और वह कारण बता सकता है कि उसे दंडित करने की सिफारिश राज्यपाल से क्यों नहीं की जानी चाहिए और उसका उत्तर प्राप्त होने पर मामले पर विचार करें, और यदि यह अभी भी है यह राय कि नोटिस में प्रस्तावित दंड अपराधी अधिकारी को दिया जाना चाहिए, यह उस आदेश को पारित करने की सिफारिश के साथ मामले को राज्यपाल को अग्रेषित करेगा, या (2) उच्च न्यायालय इस सिफारिश के साथ कागजात को राज्यपाल को अग्रेषित कर सकता है कि दोषी व्यक्ति को सेवा से हटाने या बर्खास्त करने की सजा का हकदार है और संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत आवश्यक के रूप में उसे उस सजा के खिलाफ कारण बताने के लिए नोटिस जारी किया जा सकता है। कारण बताओ नोटिस का जवाब सरकार को सीधे या उच्च न्यायालय के माध्यम से प्राप्त होगा, लेकिन सरकार द्वारा उच्च न्यायालय की राय मांगी जाएगी कि अधिकारी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के मद्देनजर, उच्च न्यायालय अभी भी है या नहीं। राय है कि सेवा से निष्कासन या सेवा से बर्खास्तगी की बड़ी सजा दी जानी चाहिए। इसके बाद उच्च न्यायालय दिए गए स्पष्टीकरण पर विचार करेगा।

(3) सी.ए. 1973 की संख्या 1503 और 1974 की 852 और 854 का फैसला 24 जनवरी, 1975 को सुप्रीम कोर्ट ने किया। अपराधी अधिकारी द्वारा और उसे दिये जाने वाले दण्ड के संबंध में राज्यपाल को अपनी सिफ़ारिश करना।

(8) यह तर्क दिया गया है कि 'संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत कारण बताओ नोटिस जारी करना और अधिकारी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण की प्राप्ति और विचार के बाद सजा का आदेश पारित करना एक अर्ध-न्यायिक कार्य है। जिसे किसी अन्य की सलाह के बिना दंड देने वाले प्राधिकारी द्वारा ही निष्पादित किया जा सकता है और इसलिए, यदि सेवा से हटाने या सेवा से बर्खास्तगी की सजा उच्च न्यायालय द्वारा पारित नहीं की जा सकती है, लेकिन केवल राज्यपाल द्वारा पारित की जा सकती है, तो वह अकेले ही कारण बताओ नोटिस जारी करना है और संबंधित अधिकारी से प्राप्त स्पष्टीकरण के आलोक में निर्णय लेना है कि सजा दी जाए या नहीं और

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

उस चरण में उच्च न्यायालय तस्वीर में नहीं आता है। यह तर्क अधीनस्थ न्यायालयों और पीठासीन न्यायाधीशों पर उच्च न्यायालय के

नियंत्रण के साथ असंगत है, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 235 की व्याख्या करते समय नृपेंद्र नाथ बागची के मामले (2) (सुप्रा) में आधिकारिक तौर पर निर्धारित किया गया है। उसमें कहा गया है कि उच्च न्यायालय न्यायपालिका पर नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक है और वह नियंत्रण पूर्ण है। नियंत्रण की उस शक्ति का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय को यह तय करना होगा कि अपराधी अधिकारी किस सजा का हकदार है, और यदि प्रस्तावित सजा ■ उसके अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर है, तो वह स्वयं आवश्यक आदेश पारित कर सकता है, लेकिन यदि उसे लागू किया जा सकता है केवल राज्यपाल द्वारा, आवश्यक आदेश पारित करने के लिए उसे कागजात अग्रेषित करना होता है। इन आदेशों को पारित करने की शक्ति राज्यपाल को नियंत्रण की शक्ति नहीं देती है जिससे कि वह स्वयं पूरे मामले की समीक्षा कर सके और यह पता लगा सके कि उच्च न्यायालय द्वारा की गई सिफारिश सही है या नहीं। अनुशासनात्मक नियंत्रण को दो प्राधिकारियों, अर्थात् उच्च न्यायालय और राज्यपाल के बीच विभाजित नहीं किया जा सकता है। उच्च न्यायालय की नियंत्रण शक्ति और न्यायिक अधिकारी को सेवा से बर्खास्त करने या हटाने की राज्यपाल की शक्ति को यह कहकर सुसंगत बनाया जा सकता है कि दो प्रमुख दंडों में से एक को लागू करने की प्रक्रिया का अर्ध-न्यायिक हिस्सा किसके द्वारा किया जाना है उच्च न्यायालय जबकि प्रशासनिक आदेश राज्यपाल द्वारा पारित किया जाएगा। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय सज़ा का प्रस्ताव करेगा और राज्यपाल उसे लागू करेगा। मामले को राज्यपाल के पास भेजा जाना चाहिए क्योंकि (1) वह। नियुक्ति प्राधिकारी होने के नाते संविधान के अनुच्छेद 311(1) के तहत आदेश पारित करना होता है, और (2) उच्च न्यायालय राज्यपाल के नाम पर आदेश पारित नहीं कर सकता है जबकि किसी न्यायिक अधिकारी को सेवा से बर्खास्त करने या हटाने का आदेश देना होता है। संविधान द्वारा स्वीकृत तरीके से राज्यपाल के नाम पर पारित किया गया।

केवल इसी उद्देश्य से मामले को राज्यपाल के पास भेजा जाता है। इस मामले में राज्यपाल की भूमिका की कोई अन्य व्याख्या उच्च न्यायालय में निहित न्यायपालिका पर नियंत्रण की पूर्णता पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। सेवा से हटाने या सेवा से बर्खास्तगी का आदेश पारित करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, राज्यपाल यह तय नहीं

कर सकता कि अपराधी अधिकारी दोषी है या नहीं; उन्हें इस मामले में हाई कोर्ट का फैसला स्वीकार करना होगा. अधिक से अधिक (लेकिन स्वीकार किए बिना) यह राज्यपाल के लिए खुला हो सकता है कि वह इस मामले पर उच्च न्यायालय के साथ चर्चा कर सकते हैं यदि वह उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें प्रदान की गई सामग्री पर एक राय बनाते हैं कि सेवा से हटाने या बर्खास्तगी की सजा दी जाएगी। उच्च न्यायालय द्वारा अनुशंसित सेवा बहुत कठोर है या उचित नहीं है और यदि चर्चा के बाद भी वह असहमत रहता है, तो उसे अपनी शक्ति के भीतर कोई अन्य उचित दंड लगाने के लिए मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेजना चाहिए। मैं इस बात पर जोर दे सकता हूं कि जहां तक न्यायपालिका का संबंध है, राज्यपाल और उच्च न्यायालय को सामंजस्य के साथ काम करना होगा और संविधान का प्रमुख सिद्धांत यह है कि न्यायपालिका को कार्यपालिका से स्वतंत्र होना है, न्यायपालिका पर पूरा नियंत्रण उच्च में

निहित है। न्यायालय में अनुशासनात्मक मामले शामिल हैं और यह उचित ही है कि राज्यपाल को दोषी अधिकारी के अपराध और सजा के मामले में उच्च न्यायालय की सिफारिश से खुद को बाध्य महसूस करना चाहिए। यह निष्कर्ष संविधान के अनुच्छेद 235 में सन्निहित उच्च न्यायालय के नियंत्रण से आता है जैसा कि नृपेंद्र नाथ बागची के मामले (2) (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य द्वारा समझाया गया है। अन्य निर्णयित मामलों में कुछ टिप्पणियाँ भी उस निष्कर्ष तक पहुँचती हैं। शमशेर सिंह के मामले (1) में रिपोर्ट के पैराग्राफ 78 में, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, यह फैसला सुनाया गया है कि "राज्यपाल उच्च न्यायालय की सिफारिश पर कार्य करेंगे। यह अनुच्छेद 235 का व्यापक आधार है।" उस फैसले में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि राज्यपाल अपनी एजेंसी के माध्यम से कोई जांच नहीं करा सकते, भले ही वह उच्च न्यायालय द्वारा की गई सिफारिश से संतुष्ट न हों। उसी फैसले में, अपने और भगवती के लिए कृष्णा अय्यर, जे. जे., संविधान के अनुच्छेद 217(3) के प्रावधानों के संदर्भ में, जो यह प्रावधान करता है कि "यदि किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की उम्र के बारे में कोई प्रश्न उठता है, तो उस प्रश्न का निर्णय राष्ट्रपति द्वारा मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बाद किया जाएगा।" भारत का न्याय और राष्ट्रपति का निर्णय अंतिम होगा", रिपोर्ट के पैराग्राफ 148 में निम्नानुसार देखें: -

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

"संविधान की योजना के आलोक में जिसका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, यह संदिग्ध है कि क्या राष्ट्रपति की व्यक्तिगत संतुष्टि के लिए ऐसी व्याख्या सही है। हमारा विचार है कि राष्ट्रपति का अर्थ, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, मंत्री या मंत्रिपरिषद, जैसा भी मामला हो, है, और उसकी राय, संतुष्टि या निर्णय संवैधानिक रूप से सुरक्षित है जब उसके मंत्री ऐसी राय, संतुष्टि या निर्णय पर पहुंचते हैं।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता, जो संविधान का एक प्रमुख सिद्धांत है और जिस पर विचलन को उचित ठहराने के लिए भरोसा किया गया है, भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श को अनिवार्य बनाते हुए प्रासंगिक अनुच्छेद द्वारा संरक्षित है। सभी कल्पनीय मामलों में भारतीय न्यायाधीश के उस सर्वोच्च गणमान्य व्यक्ति के साथ परामर्श भारत सरकार द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए और न्यायालय को यह जांचने का अवसर मिलेगा कि क्या मंत्री के फैसले में कोई अन्य बाहरी परिस्थितियां शामिल हुई हैं, यदि वह इससे हटते हैं भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा दी गई सलाह. व्यवहार में ऐसे संवेदनशील विषय में अंतिम शब्द भारत के मुख्य न्यायाधीश का होना चाहिए, उनकी सलाह की अस्वीकृति को आमतौर पर आदेश को ख़राब करने वाले परोक्ष विचारों द्वारा प्रचारित माना जाता है। इस दृष्टि से यह महत्वहीन है कि राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री या न्याय मंत्री औपचारिक रूप से इस मुद्दे पर निर्णय लेते हैं। (जोर दिया गया)।

यह सच है कि रिपोर्ट के अनुच्छेद 99 में विद्वान न्यायाधीश ने कहा:

"तीसरा, क्या उच्च न्यायालय ने न्यायिक कर्मियों की सेवा समाप्त करने के संबंध में अंतिम निर्णय लिया है, सरकार इसे लागू करने के लिए एक औपचारिक एजेंसी है? इसे बार में चुनौती दी गई थी, हालाँकि बाद में बताए गए कारणों के कारण हम इस पर अंतिम रूप से विचार नहीं कर सकते हैं।"

इस अवलोकन के आधार पर याचिकाकर्ता और राज्य सरकार के विद्वान वकील द्वारा यह जोरदार तर्क दिया गया है कि उनके न्यायालय को रिपोर्ट के पैराग्राफ 148 में विद्वान न्यायाधीश की टिप्पणियों से प्रभावित नहीं होना चाहिए। रिपोर्ट के पैराग्राफ 155 में विद्वान न्यायाधीश की टिप्पणियाँ, जो निम्नानुसार हैं, भी प्रासंगिक हैं: -

"मामले में दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा, जैसा कि पहले संकेत दिया गया है, निर्भय न्याय पर आधारित है, जो हमारे संविधान का एक और प्रमुख सिद्धांत है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता हमारे संस्थापक दस्तावेज़ का एक संघर्षशील विश्वास है। लॉर्ड कोक के दिनों से, इंग्लैंड में कार्यकारी नियंत्रण से न्यायिक स्वतंत्रता प्राप्त की गई है। हमारे संविधान के निर्माताओं ने, इस उदाहरण से प्रभावित होकर, न्यायपालिका को सशक्त बनाने के प्रावधानों को शामिल करके कानून के शासन के मूल्यवान मूल्य को मजबूत किया है। न्याय तभी निष्पक्ष और स्वतंत्र होता है जब संस्थागत प्रतिरक्षा और स्वायत्तता की गारंटी दी जाती है (निस्संदेह न्यायिक स्वतंत्रता के अन्य आयाम भी हैं जो महत्वपूर्ण हैं लेकिन वर्तमान चर्चा के लिए अप्रासंगिक हैं)। अधीनस्थ न्यायपालिका, यानी, जमीनी स्तर के न्याय में कार्यपालिका के हस्तक्षेप का बहिष्कार, एक चिढ़ाने वाला भ्रम साबित हो सकता है यदि उन पर नियंत्रण उच्च न्यायालय और

सरकार के माध्यम से दो स्वामियों में निहित है, बाद वाला अन्यथा मजबूत है। कभी-कभी स्थानांतरण सज़ा से अधिक हानिकारक हो सकता है और उच्च न्यायालय द्वारा अनुशासनात्मक नियंत्रण भी उच्च न्यायालय के प्रशासनिक आदेशों पर सरकार में निहित अपीलीय क्षेत्राधिकार द्वारा बाधित हो सकता है। इस संवैधानिक परिप्रेक्ष्य ने हमारे संविधान के निर्माताओं को सूचित किया जब उन्होंने प्रासंगिक अनुच्छेद 233 से 237 को अधिनियमित किया। उच्च न्यायालय के अपने अधीनस्थ अंगों पर प्रशासनिक क्षेत्राधिकार की कोई भी व्याख्या इस विचार से प्रेरित होनी चाहिए कि कार्यपालिका को न्यायपालिका से अलग करना एक कार्डिनल है। हमारे संविधान का सिद्धांत. हालाँकि, हम इस प्रश्न को आगे नहीं बढ़ाते हैं क्योंकि, वर्तमान मामले में, सरकार उच्च न्यायालय की सिफ़ारिशों से सहमत है और उस पर कार्य करती है, और इसके अलावा, संघर्ष समाधान की पद्धति,

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

जब उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण कार्यपालिका के लिए अरुचिकर होता है। , लंबित अपीलों के एक अलग सेट में सीधे विचार किया जाना है। (जोर दिया गया)।

हो सकता है कि मामले का अंतिम निर्णय न हुआ हो, लेकिन उन टिप्पणियों के समर्थन में बताए गए कारणों की सुदृढ़ता के कारण हम निश्चित रूप से विद्वान न्यायाधीश की टिप्पणियों से मार्गदर्शन ले सकते हैं।

(9) एन.एस. राव के मामले में भी, पिछले मामलों की समीक्षा के बाद, यह कहा गया है कि "राज्यपाल के पास उच्च न्यायालय की सिफारिशों पर बर्खास्तगी, हटाने या समाप्ति का आदेश पारित करने की शक्ति है, जो कि के अभ्यास में की जाती है। नियंत्रण की शक्ति उच्च न्यायालय में निहित है। बेशक, इस नियंत्रण के तहत उच्च न्यायालय जिला न्यायाधीशों की सेवाएं समाप्त नहीं कर सकता है या उन्हें हटाकर या कम करके कोई सजा नहीं दे सकता है। * जिला न्यायाधीशों पर नियंत्रण यह है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही उच्च न्यायालय द्वारा शुरू की जाती है। यदि किसी अनुशासनात्मक कार्यवाही के परिणामस्वरूप किसी जिला न्यायाधीश को सेवा से हटाया जाना है या कोई सज़ा दी जानी है, तो वह सेवा की शर्तों के अनुसार होगा। इन टिप्पणियों से स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि दो प्रमुख दंडों में से एक, यानी सेवा से बर्खास्तगी या निष्कासन की सिफारिश उच्च न्यायालय द्वारा अपनी नियंत्रण की शक्ति का प्रयोग करते हुए की जाती है और उसके बाद राज्यपाल कोई वरिष्ठ नहीं हो सकता है या उच्च

न्यायालय के निष्कर्षों और सिफारिशों की जांच करने की अपीलीय शक्ति जैसे कि उच्च न्यायालय उसके अधीनस्थ एक प्राधिकारी है। इस बात पर एक से अधिक बार जोर दिया गया है कि उच्च न्यायालय किसी भी मामले में राज्यपाल के अधीनस्थ प्राधिकारी नहीं है। उच्च न्यायालय सरकार के तीसरे विंग का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें कार्यपालिका एक अन्य विंग है, जिसमें राज्यपाल सामान्य कड़ी है। इस कारण से भी, एक बार जब उच्च न्यायालय द्वारा वर्तमान मामले में सिफारिश की गई थी कि याचिकाकर्ता को सेवा से हटा दिया जाना चाहिए, तो राज्यपाल को उस सिफारिश से अलग होने और किसी भी विचार पर उस आदेश को पारित करने से इनकार करने का कोई अधिकार नहीं था।

(10) इंदर प्रकाश आनंद बनाम हरियाणा राज्य और अन्य में इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ (4)। यह तय करना था कि क्या सरकार उच्च न्यायालय की सिफारिश के खिलाफ पंजाब सिविल सेवा नियम, खंड II के नियम 5.32 (सी) के तहत सेवा से सेवानिवृत्ति का नोटिस जारी कर सकती है और यह देखा गया कि किसी व्यक्ति को न्यायिक पद पर नियुक्त करने के बाद किसी राज्य की सेवा करते समय, वह प्रशासनिक, न्यायिक और अनुशासन से संबंधित सभी मामलों में उच्च न्यायालय के नियंत्रण के अधीन हो जाता है, सिवाय इसके कि यदि उसकी योग्यता के अनुसार बर्खास्तगी या निष्कासन का आदेश पारित किया जाना है, तो सक्षम प्राधिकारी पारित कर सकता है। वह आदेश राज्य सरकार का है. नृपेंद्र नाथ बक्शी के मामले 2 (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के उनके आधिपत्य द्वारा ऐसा माना गया था। संक्षेप में, यह माना गया कि किसी व्यक्ति को राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्त किए जाने के बाद, राज्य सरकार कार्यात्मक अधिकारी बन जाती है और संपूर्ण नियंत्रण-प्रशासनिक, न्यायिक और अनुशासनात्मक-उच्च न्यायालय में निहित हो जाती है। जब तक वह अधिकारी सेवा में रहता है, उसकी सेवा के संबंध में सभी आदेश या तो उच्च न्यायालय द्वारा या राज्य सरकार द्वारा केवल उन मामलों के संबंध में उच्च न्यायालय की सिफारिश पर पारित किए जाते हैं जिन पर राज्य सरकार संविधान के प्रावधानों या न्यायिक सेवा को नियंत्रित करने वाली सेवा की शर्तों के तहत अधिकार क्षेत्र दिया गया है। राज्य सरकार अपनी पहल पर कोई आदेश जारी नहीं कर सकती। उच्च न्यायालय के नियंत्रण के दायरे को समझने के लिए, हमें कल्पना करनी चाहिए कि न्यायपालिका का एक घर है जिसमें एक न्यायिक अधिकारी को सरकार के आदेश से शामिल किया जाता है, लेकिन जैसे ही वह घर के पोर्टल में प्रवेश करता है।

---

(4) I.L.R. (1972) 1 Pb. & Hr. 698

वह उच्च न्यायालय के नियंत्रण में आ जाता है और जब तक वह सदन में रहता है, सरकार को यह भी अधिकार नहीं है कि वह सदन में झाँक कर यह जान सके कि वह कैसा व्यवहार या कार्य कर रहा है। जब तक वह सदन में है, उसकी सेवा से संबंधित सभी मामलों का निर्णय करना उच्च न्यायालय का काम है, यानी परिवीक्षा अवधि के सफल समापन पर पुष्टि, स्थानांतरण, दक्षता बाधा को पार करने की अनुमति और पदोन्नति। संबंधित न्यायिक अधिकारी के समयमान में चयन ग्रेड। यदि वह दुर्व्यवहार करता है और दुर्व्यवहार गंभीर प्रकार का है, तो सेवा से हटाने या सेवा से बर्खास्तगी से कम की सजा उच्च न्यायालय द्वारा पारित की जाएगी। लेकिन एक बार जब उच्च न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि वह सदन में बने रहने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं है, तो उसे राज्यपाल को अपने विचारों से अवगत कराना होगा और अनुरोध करना होगा कि उसे उसी तरीके से सदन से बाहर निकाला जाए जिस तरह से उसे शामिल किया गया था। हाई कोर्ट उसे बाहर तो ले जा सकता है, लेकिन बाहर नहीं धकेल सकता। इस स्तर पर राज्यपाल को एक औपचारिक आदेश पारित करके उसे सदन से बाहर निकालने की अपनी शक्ति का प्रयोग करना होता है, जिसके अनुसरण में अधिकारी को बाहर जाना होता है और उसके बाद वह सदन में नहीं रह सकता है। यह निर्णय कि उन्हें न्यायपालिका के घर से बाहर निकाला जाना चाहिए, केवल उच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय को ही लेना है और राज्यपाल इस बात पर जोर नहीं दे सकते कि उन्हें न्यायपालिका के सदन में ही रखा जाना चाहिए, भले ही उच्च न्यायालय की दृढ़ राय हो कि उन्हें वहां नहीं रहना चाहिए. यदि यह सादृश्य सही है, तो शमशेर सिंह के मामले (1) में रिपोर्ट के पैराग्राफ 148 के अंत में कृष्णा अय्यर, जे की भाषा को उधार लेने के लिए, इस निर्णय के पहले भाग में विस्तार से उद्धृत किया गया है, यह कहा जा सकता है व्यवहार में ऐसे संवेदनशील विषय में अंतिम निर्णय उच्च न्यायालय का होना चाहिए और उसकी सलाह की अस्वीकृति को आमतौर पर आदेश को ख़राब करने वाले परोक्ष विचारों से प्रेरित माना जाएगा और यह मायने नहीं रखता है कि क्या राज्यपाल या मुख्यमंत्री, मंत्री या मंत्री न्याय मंत्री औपचारिक रूप से आदेश पारित करते हैं।

(11) संविधान के अनुच्छेद 235 की इस व्याख्या के विरुद्ध, याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान वकील ने दृढ़ता से आग्रह किया है कि शक्ति का मतलब केवल दायित्व नहीं है और जब सेवा से बर्खास्त करने या हटाने की शक्ति निहित है संविधान के अनुच्छेद 311 और सेवा नियमों के तहत राज्यपाल को ही यह पता लगाने का अधिकार है कि दोषी अधिकारी दोषी है या नहीं और वह किस सजा का हकदार है। वह न्यायिक अधिकारी को दोषमुक्त भी कर सकता है यदि वह संतुष्ट है कि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के आधार पर उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। मुझे इस निवेदन को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता पर खेद है। राज्यपाल को उच्च न्यायालय की अनुशंसा के अनुसार सेवा से बर्खास्तगी या सेवा से हटाने का आदेश पारित करने की शक्ति दी गई है। संविधान के

अनुच्छेद 311 को संविधान के अनुच्छेद 235 के अनुरूप माना जाना चाहिए और मैंने इस दलील के समर्थन में फैसले के पहले भाग में अपने कारण पहले ही दे दिए हैं कि राज्यपाल को केवल एक आदेश पारित करना है और उस पर निर्णय नहीं देना है। मामले. के प्रावधानों में यह अज्ञात नहीं है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति या राज्यपाल को केवल किसी अन्य निकाय की सलाह के अनुसार आदेश पारित करने की शक्ति दी गई है। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद

103 में, राष्ट्रपति को यह निर्णय लेने की शक्ति दी गई है कि क्या संसद के किसी भी सदन का सदस्य संविधान के अनुच्छेद 102 के खंड (1) में उल्लिखित किसी अयोग्यता के अधीन हो गया है और उसका निर्णय है अंतिम। लेकिन ऐसे किसी भी प्रश्न पर कोई भी निर्णय देने से पहले राष्ट्रपति को चुनाव आयोग की राय लेने और उस राय के अनुसार कार्य करने का आदेश दिया गया है। इस अनुच्छेद का स्पष्ट अर्थ है कि अयोग्यता के प्रश्न पर राय चुनाव आयोग की होगी और राष्ट्रपति उस राय के अनुसार ही अपना आदेश पारित करेंगे, अर्थात वह इस मामले में अपने मन का प्रयोग नहीं कर सकते हैं और उन्हें राय का पालन करना होगा। चुनाव आयोग द्वारा निविदा. संविधान के अनुच्छेद 192 में राज्य विधानमंडलों के सदस्यों के संबंध में भी इसी तरह का प्रावधान किया गया है और राज्यपाल को यह निर्णय लेने की शक्ति दी गई है कि विधानमंडल का कोई सदस्य खंड में उल्लिखित किसी भी अयोग्यता के अधीन हो गया है या नहीं।

(1) अनुच्छेद 191 का, लेकिन उसे अपना निर्णय चुनाव आयोग की राय के अनुरूप देना होगा। अनुच्छेद 217(3) भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बाद राष्ट्रपति को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु से संबंधित किसी भी प्रश्न पर निर्णय लेने की शक्ति देता है। 'भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श के बाद' वाक्यांश की व्याख्या करते हुए, कृष्णा अय्यर, जे., ने शमशेर सिंह के मामले (1) में यह टिप्पणी की है कि "व्यवहार में ऐसे संवेदनशील विषय में अंतिम शब्द मुख्य न्यायाधीश का होना चाहिए भारत में, उनकी सलाह की अस्वीकृति को आम तौर पर आदेश को ख़राब करने वाले परोक्ष विचारों से प्रेरित माना जाता है। इस दृष्टि से यह महत्वहीन है कि राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री या न्याय मंत्री औपचारिक रूप से इस मुद्दे पर निर्णय लेते हैं। विद्वान न्यायाधीश ने इस बात पर जोर दिया कि भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श प्रदान करने का उद्देश्य न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए संविधान के प्रमुख सिद्धांत के अनुसार था और यदि मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श अनिवार्य है, तो अंतिम शब्द उसी के पास होना चाहिए। उसे। परामर्श सिफारिश की तुलना में नरम है और सिफारिश नियंत्रण की तुलना में नरम है और इसलिए, यह उचित है कि उच्च न्यायालय का नियंत्रण, जैसा कि

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

संविधान के अनुच्छेद 235 में निहित है, को पूर्ण, एकमात्र और पूर्ण माना जाना चाहिए ताकि कोई भी सिफारिश की जा सके। इसे, उस शक्ति का प्रयोग करते हुए, संविधान के अनुच्छेद 311 और सेवा नियमों के तहत राज्यपाल सहित सभी प्राधिकारियों पर बाध्यकारी माना जाना चाहिए, जिन्हें इसके अनुसार कार्य करना है। मामले के इस दृष्टिकोण में, यह तय करना आवश्यक नहीं है कि क्या अनुच्छेद 235 संविधान के अनुच्छेद 311 को ओवरराइड करता है या इसके विपरीत। एक ही संविधान में होने के कारण, दोनों प्रावधानों को सामंजस्य के साथ काम करना होगा और यदि यह संभव है, तो एक को दूसरे के अधीन करने का अवसर है। हालाँकि, इस बात पर जोर दिया जा सकता है कि अनुच्छेद 311 केवल ऐसे मामलों पर लागू होता है जिसमें नियुक्ति प्राधिकारी नियंत्रण प्राधिकारी भी होता है और उसे सभी दंड देने का अधिकार होता है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा और विभागीय जांच शुरू करने और मामले से निपटने का अधिकार होता है। सज़ा मिलने तक. न्यायिक अधिकारियों के मामले में, अनुच्छेद 311 का अनुप्रयोग सीमित है। बर्खास्तगी या सेवा से हटाने के आदेश राज्यपाल द्वारा पारित किए जाने हैं, लेकिन जांच उच्च न्यायालय द्वारा की जानी है।

(12) याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान वकील द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि यदि संविधान निर्माताओं का इरादा था कि राज्यपाल को अपने मन का प्रयोग नहीं करना था और उच्च न्यायालय द्वारा अनुशंसित आदेश पारित करना था, तो प्रावधान इस आशय का स्पष्ट उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 235 या किसी अन्य अनुच्छेद में किया गया होगा। संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों और उच्च मुख्य न्यायाधीशों के एक सम्मेलन में इस बात पर जोर दिया गया है। मार्च, 1948 में अदालतें आयोजित की गईं। यह देखा गया कि अधीनस्थ न्यायपालिका पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया और न ही 1947 में संवैधानिक सलाहकार द्वारा तैयार किए गए प्रारूप संविधान में, न ही 1948 में मसौदा समिति द्वारा तैयार किए गए प्रारूप में इस विषय पर कोई विशिष्ट प्रावधान था। उस सम्मेलन के परिणामस्वरूप सरकार को सौंपे गए ज्ञापन में संविधान में अधीनस्थ न्यायपालिका के लिए विशेष रूप से प्रावधान करने की चूक का प्रमुखता से उल्लेख किया गया था, इस टिप्पणी के साथ कि: -

“जब तक जिला न्यायाधीशों सहित अधीनस्थ न्यायपालिका को अपनी नियुक्ति, पोस्टिंग, पदोन्नति और छुट्टी के लिए प्रांतीय कार्यकारिणी पर निर्भर रहना पड़ता है, तब तक वे सत्ता में पार्टी के सदस्यों के प्रभाव से पूरी तरह

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

मुक्त नहीं रह सकते हैं और उनसे ऐसी उम्मीद भी नहीं की जा सकती है। अपने कर्तव्यों के निर्वहन में निष्पक्ष एवं स्वतंत्र रूप से कार्य करें। इसलिए, यह सिफ़ारिश की जाती है कि ऐसा प्रावधान किया जाए कि इसकी शक्ति विशेष रूप से उच्च न्यायालयों के हाथों में हो जिला न्यायाधीशों सहित संपूर्ण अधीनस्थ न्यायपालिका के संबंध में नियुक्ति और बर्खास्तगी, पोस्टिंग, पदोन्नति और छुट्टी देना।"

यह उस ज्ञापन के कारण था कि मसौदा समिति ने संविधान के भाग VI में अध्याय VI डाला, जिसमें अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित अनुच्छेद 233 से 237 शामिल थे। नृपेंद्र नाथ बागची के मामले (2) (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले को काफी विस्तार से निपटाया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि 'नियंत्रण' एक उद्देश्य को पूरा करने के लिए उच्च न्यायालय में निहित था, अर्थात् स्वतंत्रता की सुरक्षा अधीनस्थ न्यायपालिका का और जब तक इसमें अनुशासनात्मक नियंत्रण भी शामिल नहीं होगा, उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। ज्योति प्रकाश मिल्टर बनाम द मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर जोर दिया गया था माननीय श्री न्यायमूर्ति एच.के. बोस, मुख्य न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, कलकत्ता और अन्य (5) रिपोर्ट के पैराग्राफ 29 में, निम्नानुसार हैं: -

"अपीलकर्ता द्वारा इस विवाद के शुरुआती चरणों में दी गई दलील में काफी दम है कि यदि कार्यपालिका को उच्च न्यायालय के मौजूदा न्यायाधीश की उम्र निर्धारित करने की अनुमति दी जाती है, तो यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता को गंभीर रूप से प्रभावित करेगा।"

चंद्र मोहन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (6) में, इसे निम्नानुसार देखा गया: -

"जब तक भारत को स्वतंत्रता नहीं मिली, तब तक स्थिति यह थी कि जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा तीन स्रोतों से की जाती थी, अर्थात्, (i) भारतीय सिविल सेवा, (ii) प्रांतीय न्यायिक सेवा, और (iii) बार। लेकिन 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद, भारतीय सिविल सेवा में भर्ती बंद कर दी गई और भारत सरकार ने निर्णय लिया कि नव निर्मित भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों को न्यायिक पद नहीं दिए जाएंगे। इसके बाद जिला न्यायाधीशों की भर्ती या तो न्यायिक सेवा या बार से ही की जाती रही है। कार्यकारिणी के किसी सदस्य को जिला न्यायाधीश के रूप में पदोन्नत करने का कोई मामला नहीं था। यदि वह एक था संविधान लागू होने के समय की तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार, संविधान के उन मार्करों को जिम्मेदार ठहराया जाना अनुचित है, जिन्होंने न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए इतनी सावधानी से व्यवस्था की है कि अप्रत्यक्ष तरीके से उसे नष्ट करने का इरादा है।

(5) A.I.R. 1965 S.C. 961.

(6) (1967) 1 S.C.R. 77.

असम राज्य और अन्य बनाम कुसेश्वर सैकिया 'और अन्य में

(7), विद्वान न्यायाधीशों ने इस प्रकार कहा: - "हमारा विचार है कि परिवर्तन से निचले स्तरों पर न्यायपालिका की स्वतंत्रता में कमी आने की संभावना है, जिनकी पदोन्नति, जो संविधान द्वारा सलाहपूर्वक उच्च न्यायालय में निहित थी , अब पूरी तरह से उच्च न्यायालय के हाथ में नहीं होगा। इसका उपाय कानून में संशोधन करके पूर्व स्थिति बहाल करना है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं ने संविधान के अनुच्छेद 233 से 237 में अधीनस्थ न्यायालयों के लिए विशेष प्रावधान करके कार्यपालिका के प्रभाव से न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना चाहा था। यदि वह उद्देश्य था, तो अनुच्छेद 235 की वही व्याख्या की जानी चाहिए जो उस उद्देश्य को प्रभावित करती है^ इसे सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स, लिमिटेड बनाम आशेर (8) में डेनिंग, एल.जे. द्वारा निम्नानुसार देखा गया था: -

“अंग्रेजी भाषा गणितीय परिशुद्धता का साधन नहीं है। यदि ऐसा होता तो हमारा साहित्य बहुत अधिक गरीब होता। यहीं पर संसद के अधिनियमों के प्रारूपकारों की अक्सर अनुचित आलोचना की गई है। एक न्यायाधीश, जो खुद को कथित नियम से बंधा हुआ मानता है कि उसे भाषा को देखना चाहिए और कुछ नहीं, अफसोस जताता है कि ड्राफ्ट्समैन ने इसके लिए या उसके लिए प्रावधान नहीं किया है, या किया गया है।

किसी न किसी अस्पष्टता का दोषी। यदि संसद के अधिनियमों को दैवीय विवेक और पूर्ण स्पष्टता के साथ तैयार किया गया तो यह निश्चित रूप से न्यायाधीशों की परेशानी से बचाएगा। इसके अभाव में, जब कोई दोष प्रकट होता है, तो कोई न्यायाधीश हाथ जोड़कर ड्राफ्ट्समैन को दोषी नहीं ठहरा सकता। उसे जरूर
संसद के इरादे को जानने के रचनात्मक कार्य पर काम करने के लिए तैयार है, और उसे यह न केवल क़ानून की भाषा से करना होगा, बल्कि उन सामाजिक परिस्थितियों पर भी विचार करना होगा जिन्होंने इसे जन्म दिया और जिस शरारत के कारण इसे पारित किया गया उपाय करने के लिए, और फिर उसे लिखित शब्द को पूरक करना होगा ताकि विधायिका के इरादे को "बल और जीवन" दिया जा सके। यह न्यायाधीशों (सर रोजर मैनवुड) के प्रस्ताव द्वारा स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था

---

7) AIR 1970 1616
8) 1949) 2 AE.L.R. 155

हेडन के मामले (9) में न्यायाधीशों (सर रोजर मैनवुड) आईसीबी और राजकोष के अन्य दिग्गजों के प्रस्ताव द्वारा इसे स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था और यह आज सबसे सुरक्षित मार्गदर्शक है। इस विषय पर अच्छी व्यावहारिक सलाह लगभग उसी समय प्लॉडेन ने ईस्टन बनाम स्टड (10) के अपने नोट में दी थी। घरेलू रूपक में कहें तो यह इस प्रकार है: एक न्यायाधीश को खुद से यह सवाल पूछना चाहिए कि, यदि अधिनियम के निर्माताओं को स्वयं इसकी बनावट में इस गड़बड़ी का पता चला होता, तो उन्होंने इसे कैसे सीधा किया होता? फिर उसे वैसा ही करना होगा जैसा उन्होंने किया होगा। एक न्यायाधीश को उस सामग्री को नहीं बदलना चाहिए जिससे अधिनियम बुना गया है, लेकिन वह सिलवटों को दूर कर सकता है और करना भी चाहिए।

इन टिप्पणियों को बिहार राज्य और अन्य बनाम असीस कुमार मुखर्जी मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था अनुच्छेद 15 में अन्य (11): अनुच्छेद 235 के निर्माण के लिए इन टिप्पणियों से संकेत लेते हुए, यह कहा जाना चाहिए कि संविधान निर्माताओं का इरादा जिला न्यायालयों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों का नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित करना था और किया भी था। इसे उस नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक बना दिया। यदि संविधान निर्माताओं से उन मामलों के संबंध में एक विशिष्ट प्रावधान बनाने का आह्वान किया गया जिनमें राज्यपाल को बर्खास्तगी का आदेश पारित करना पड़ता है सेवा या सेवा से निष्कासन, यह निश्चित रूप से प्रदान किया गया होगा कि राज्यपाल इस विषय पर उच्च न्यायालय की सिफारिश के अनुसार आदेश पारित करेंगे। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऊपर उल्लिखित विभिन्न निर्णयों में न्यायपालिका की स्वतंत्रता को संविधान का प्रमुख सिद्धांत बताया गया है और इसलिए, यह स्पष्ट हो जाता है कि अधीनस्थ न्यायपालिका पर पूर्ण अनुशासनात्मक नियंत्रण उच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय में निहित है। न्यायालय को उचित जांच

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

के बाद और उसके स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद दोषी पाए गए अपराधी अधिकारी पर दंड का प्रस्ताव करने का अधिकार है। यह व्याख्या संविधान के अनुच्छेद 233 से 237 में अधीनस्थ न्यायालयों के संबंध में एक अलग प्रावधान करने और अनुच्छेद 235 में उच्च न्यायालय में नियंत्रण के प्रावधान के उद्देश्य और उद्देश्य को आगे बढ़ाती है। कोई भी अन्य व्याख्या उच्च न्यायालय के पूर्ण नियंत्रण पर प्रभाव डालेगी। न्यायिक अधिकारियों पर और वर्तमान मामले की तरह विसंगतिपूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न होंगी यदि एक अवांछनीय और अवांछित न्यायिक अधिकारी को सेवा के लिए उच्च न्यायालय में भेजा जाता है।

---

(9) (1584) 3 Co. Rep. 7 a.
(10) (1574) 2 Plowd 463.
(*11) A.I.R. 1975 S.C. 192.

इस प्रकार यह कार्यपालिका और उच्च न्यायालय के बीच गतिरोध या गतिरोध पैदा करेगा। चूँकि आक्षेपित आदेश, याचिकाकर्ता को सभी आरोपों से मुक्त करने और उसे बहाल करने, संविधान के अनुच्छेद 235 में सन्निहित संविधान के अनिवार्य प्रावधान के अनुसार पारित नहीं किया गया था, यह आदेश शून्य है और संविधान के अनुच्छेद 235 के अधिकारातीत नहीं है। और उच्च न्यायालय ने इसे प्रभावी न करके सही किया।

(13) विचार के लिए दूसरा बिंदु यह है कि क्या सरकार का लोक सेवा से सलाह लेना उचित था संविधान के अनुच्छेद 320(3)(सी) के तहत आयोग। मेरे पास है ऊपर पहले ही बताया जा चुका है कि उच्च न्यायालय एकमात्र संरक्षक है अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण, जैसा कि नृपेंद्र नाथ बागची के मामले (2) (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जोर दिया गया है। संबंध में लोक सेवा आयोग से परामर्श मेरी राय में, न्यायपालिका के सदस्यों पर स्पष्ट रूप से शासन किया जाता है संविधान के अनुच्छेद 235 द्वारा अन्यथा संविधान निर्माताओं द्वारा क्या उच्च की सिफ़ारिश प्रदान की होगी न्यायालय या लोक सेवा आयोग द्वारा दी गई सलाह होगी के बीच संघर्ष होने की स्थिति में सरकार पर बाध्यकारी होगा दो। यदि लोक सेवा-आयोग की सलाह मानी जाये उच्च न्यायालय की सिफ़ारिश के विरुद्ध, फिर की एकमात्रता अनुशासन के मामलों में उच्च न्यायालय का अधिकार इतना अधिक है नृपेंद्र में सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य द्वारा जोर दिया गया नाथ बागची का मामला (2) ख़त्म कर दिया जाएगा। अवलोकन कि "उच्च न्यायालय न्यायपालिका में नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक है" इसका मतलब है कि शक्ति को किसी और के साथ ज्यादा साझा नहीं करना है लोक सेवा आयोग जैसी सलाहकार संस्था के साथ कम।

चंद्र मोहन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (6) में संविधान के अनुच्छेद 233 के संबंध में, यह देखा गया अंतर्गत: -

"संवैधानिक जनादेश स्पष्ट है। राज्यपाल का अभ्यास द्वारा नियुक्ति की शक्ति किसके द्वारा सशर्त है? उच्च न्यायालय के साथ उनका परामर्श, अर्थात्, वह केवल किसी व्यक्ति को जिला न्यायाधीश के पद पर नियुक्त कर सकता है उच्च न्यायालय के परामर्श से। चुनाव का उद्देश्य- सल्लेशन स्पष्ट है. उच्च न्यायालय को जानने की उम्मीद है उपयुक्तता के संबंध में राज्यपाल से बेहतर या अन्यथा किसी व्यक्ति का, या तो 'न्यायिक' से संबंधित सेवा' या बार में, जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जाना है। इसलिए, राज्यपाल पर यह कर्तव्य बनता है कि वह ऐसा करे एक निकाय के परामर्श से नियुक्ति उसे सलाह देने के लिए उचित प्राधिकारी।

राज्यपाल द्वारा इस शासनादेश की अवहेलना दो प्रकार से की जा सकती है

(i) उच्च न्यायालय से बिल्कुल भी परामर्श न करके, और
(ii) उच्च न्यायालय और अन्य व्यक्तियों से भी परामर्श करके।

एक मामले में वह सीधे तौर पर संविधान के आदेश का उल्लंघन करता है और दूसरे में वह परोक्ष रूप से ऐसा करता है, क्योंकि उसके दिमाग पर अन्य व्यक्तियों का प्रभाव हो सकता है जो उसे सलाह देने के हकदार नहीं हैं।"

उस स्थिति में नियमों में प्रावधान है कि राज्यपाल नियुक्त कर सकता है जिला न्यायाधीश ने चयन समिति के परामर्श से जो इसमें उच्च न्यायालय और न्यायिक के दो न्यायाधीश शामिल थे सरकार के सचिव. उच्च न्यायालय व्यावहारिक रूप से छोटा हो गया था उपयुक्त सूचियों के प्रेषण प्राधिकारी के पद पर चयन समिति द्वारा नियुक्ति हेतु अभ्यर्थी तैयार किये गये। उसके पास एकमात्र विवेक यही बचा था कि वह इसकी अनुशंसा करने से इंकार कर दे भेजी गई सूचियों में शामिल सभी या कुछ व्यक्तियों की नियुक्ति यह चयन समिति द्वारा. यह चयन समिति द्वारा जांचे गए अन्य आवेदनों की जांच नहीं कर सका और न ही कर सका सूची में नहीं पाए गए व्यक्तियों को नियुक्ति के लिए अनुशंसा करें। इन पर अधिनियमों में यह माना गया कि चयन ख़राब था जैसा कि उच्च न्यायालय ने किया था परामर्श नहीं किया गया. प्रासंगिक टिप्पणियाँ हैं: -

"इस धारणा पर कि यह राज्यपाल के लिए खुला है निकायों के साथ परामर्श के लिए अनुच्छेद 309 के तहत प्रावधान
उच्च न्यायालय के अलावा, फिर भी वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उच्च न्यायालय के परामर्श से बच नहीं सकता है। हमारे जैसे पहले देखा है, नियमों के तहत परामर्श के साथ उच्च न्यायालय एक खाली औपचारिकता है। राज्यपाल योग्यताएँ निर्धारित करते हैं, उनके द्वारा नियुक्त चयन समिति उम्मीदवारों का चयन करती है और उच्च न्यायालय को करना होता है समिति ने कहा, तैयार की गई सूचियों से सिफारिश करें। यह संवैधानिक प्रावधानों का मखौल है. राज्यपाल, प्रभाव और सार में, न तो परामर्श करते हैं उच्च न्यायालय न तो उसकी

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

सिफ़ारिशों पर कार्य करता है, बल्कि केवल चयन समिति से परामर्श करता है या उसकी सिफ़ारिशों पर कार्य करता है-

सुधार उस दृष्टि से भी, संबंधित नियम अवैध हैं और उनके तहत की गई नियुक्तियाँ ख़राब हैं।"

इस मामले का अनुसरण प्रेम नाथ और अन्य बनाम राजस्थान राज्य में किया गया था और अन्य (12) (14) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने इस पर दृढ़ता से भरोसा किया प्रद्यात कुमार बोस बनाम द में सुप्रीम कोर्ट का फैसला कलकत्ता उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश (13), जिसमें यह थे यह माना गया कि लोक सेवा आयोग के साथ परामर्श नहीं किया गया था उच्च न्यायालय स्टाफ के सदस्यों के कैमरे में आवश्यक, जो मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त किया जा सकता था और जिसके पास उन्हें बर्खास्त करने और शर्तों से संबंधित नियम बनाने का अधिकार था सेवा। वे राज्य सरकार के अधीन कर्मचारी नहीं थे और, इसलिए। अनुच्छेद 320 (3) (सी) लागू नहीं हुआ। इन अवलोकनों से विद्वान वकील द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि इस मामले में संविधान के अनुच्छेद 234 के तहत राज्य की न्यायिक सेवा, नियुक्ति करने की शक्ति और निर्धारित नियम बनाने की शक्ति

सेवा की शर्तें राज्यपाल में निहित हैं और वह इसके लिए अधिकृत हैं ऐसे न्यायिक अधिकारी को सेवा से बर्खास्त करना या हटाना, इसलिए, न्यायिक सेवा पर प्रशासनिक नियंत्रण निहित है राज्यपाल और सेवा के सदस्यों को व्यक्तियों के रूप में वर्णित किया जा सकता है

राज्य सरकार के अधीन सेवारत। इस निर्णय में एक प्रासंगिक अवलोकन किया गया है कि वाक्यांश "सेवा करने वाले व्यक्ति"। भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन" प्रतीत होता है ऐसे व्यक्तियों का संदर्भ रखना जिनके संबंध में प्रशासनिक नियंत्रण संबंधित कार्यकारी सरकारों में निहित है राष्ट्रपति या राज्यपाल या के नाम पर कार्य करना पैपरमुख. यह अवलोकन करने के बाद अधिकारी का कहना है और यह नहीं कहा जा सकता कि उच्च न्यायालय के कर्मचारी इसके दायरे में आते हैंउपरोक्त वाक्यांश का क्योंकि उनके संबंध में प्रशासनिक नियंत्रण स्पष्ट रूप से मुख्य न्यायाधीश में निहित है। संविधान के तहत नियुक्ति, हटाने और बनाने की शक्ति है सेवा शर्तों के नियम. इस अवलोकन का मतलब यह नहीं है कि ये प्रशासनिक नियंत्रण के एकमात्र पहलू हैं। यह है सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आधिकारिक रूप से यह माना गया है कि पूर्ण प्रशासक न्यायिक के सदस्यों के संबंध में निरोधात्मक नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित है और. इसलिए, न्यायिक के सदस्य सेवा, हालांकि राज्य की सिविल सेवा से संबंधित नहीं है राज्य सरकार के अधीन सेवा करें, लेकिन केवल के संबंध में राज्य के मामले और, इसलिए, जनता के साथ परामर्श अनुशासनात्मक मामलों में सेवा आयोग का गठन नहीं किया जा सकता न्यायिक अधिकारियों के संबंध में.

(15) अंत में, नृपेंद्र नाथ बाकची बनाम पर भरोसा किया गया। प्रमुख शासन सचिव,पश्चिम बेनाल की सरकार (14) जिसमें यह माना गया कि लोक सेवा आयोग के साथ परामर्श किया गया था आवश्यक है क्योंकि यह संविधान द्वारा प्रदान किया गया एक सुरक्षा उपाय था सिविल सेवा के सदस्यों के लिए. यह अवलोकन पी.बी. उस निर्णय में मुखर जी, जे. को निहित रूप से माना जाना चाहिए नृपेंद्र नाथ मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को खारिज कर दिया गया बागची का मामला (2) (सुप्रा), उस फैसले के खिलाफ अपील पर अवलोकन का दृश्य कि नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक न्यायपालिका उच्च न्यायालय है। कलकत्ता में अवलोकन इसलिए, निर्णय से याचिकाकर्ता के विद्वान वकील को कोई मदद नहीं मिली।

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

(16) राज्य के विद्वान महाधिवक्ता ने उल्लेख किया है हरियाणा लोक सेवा आयोग (कार्यों की सीमा) विनियम, 1973, जिसमें विनियम 4 से 6 मामलों की गणना करते हैं जिसमें लोक सेवा आयोग से परामर्श लेना आवश्यक नहीं है और यह तर्क दिया जाता है कि न्यायिक सेवा के सदस्य हैं उसमें उल्लेख नहीं है. पिछले नियमों में संभवतः समान प्रावधान शामिल थे। लोक सेवा आयोग को नहीं करना है जब कोई सदस्य हो तो अनुशासनात्मक मामलों के संबंध में परामर्श लिया जाए

न्यायिक सेवा अनुच्छेद 235 में प्रावधान के कारण शामिल है नियंत्रण के संबंध में संविधान के. राज्य लोक सेवा आयोग को राज्य सरकार या ए द्वारा परामर्श दिया जाना है प्राधिकारी इसके अधीन है। उच्च न्यायालय के अधीन न होना राज्य सरकार को लोक सेवा आयोग से परामर्श नहीं करना होगा मिशन जब यह अपनी शक्ति के भीतर कोई सज़ा देता है। यदि ऐसा हो इसलिए, राज्यपाल को भी लोक सेवा आयोग से परामर्श नहीं करना पड़ता है जब उसे सेवा से हटाने या हटाने का आदेश पारित करना होता है न्यायिक सेवा के एक सदस्य के संबंध में सेवा से मिसल।याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने का आदेश पारित किया गया लोक सेवा आयोग द्वारा दी गई सलाह के आधार पर राज्य सरकार द्वारा सलाह को प्राथमिकता देते हुए स्वीकार कर लिया गया और उच्च न्यायालय की सिफ़ारिश. लोक सेवा के बाद से आयोग एक बाहरी संस्था थी और उससे परामर्श नहीं किया जा सकता था दण्ड देने वाले प्राधिकारी के निर्णय को प्रभावित करने में सक्षम था आदेश गंभीर संवैधानिक कमज़ोरी से ग्रस्त है और इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत अधिकारातीत घोषित किये जाने योग्य

और इसलिए इस आधार पर भी शून्य और गैर-स्थायित्व है। उच्च न्यायालय था, अत: उस आदेश की अवहेलना करना तथा उस पर अमल न करना उचित है याचिकाकर्ता को पोस्टिंग आदेश दे रहे हैं.

(17) किसी अन्य बिंदु पर तर्क नहीं दिया गया है।

(18) उपरोक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि याचिकाकर्ता ■राज्यपाल के आदेश के आधार पर किसी राहत का दावा नहीं कर सकते. दिनांक 24 अगस्त, 1968 को उन्हें सेवा में बहाल कर दिया गया और उनकी याचिका है इसलिए, खारिज कर दिया गया लेकिन लागत के बारे में कोई आदेश दिए बिना। बर्खास्तगी हालाँकि, यह याचिका राज्य सरकार को रोक नहीं पाएगी उच्च न्यायालय की अनुशंसा के अनुसार याचिकाकर्ता के खिलाफ आदेश पारित करना पूरी तरह से नजरअंदाज करना और बाहर रखना लोक सेवा आयोग द्वारा दी गई सलाह पर विचार करना।

कोशल, जे.-मैं सहमत हूं।

संधवालिया, जे.-मैं सहमत हूं।

जैन, जे.-मैं भी सहमत हूं।

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

(19) मन मोहन सिंह गुजराल, जे.-इस याचिका के तहत भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 द्वारा दायर किया गया अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्य श्री बी. आर. गुलियानी दावा कर रहे हैं याचिकाकर्ता को पोस्ट करने के लिए प्रतिवादी नंबर 2 को निर्देश देने वाला परमादेश अधीनस्थ न्यायाधीश प्रथम श्रेणी-सह-न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी और अन्य परिणामी राहतें, विचार और निर्णय का दावा करने वाले मुख्य कानूनी मुद्दे निम्नानुसार तैयार किए जा सकते हैं: -

1. राज्य सरकार को लगाने का अधिकार है बर्खास्तगी या सेवा से निष्कासन की सजा को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 311 के प्रावधानों को अनुच्छेद 234 के साथ पढ़ें भारत के संविधान में क्या यह आदेश पारित करने के लिए बाध्य है? उच्च न्यायालय द्वारा की गई सिफ़ारिश की शर्तें अनुच्छेद 235 के तहत इसके नियंत्रण का प्रयोग या राज्य है सरकार को अपना दिमाग लगाना होगा और आना होगा एक स्वतंत्र निर्णय कि क्या आदेश लागू किया जाए अनुच्छेद के अनुसार निष्कासन या बर्खास्तगी की सजा 311(1) पारित होना है या नहीं?सहमत हैं और मैं दूसरे पर व्यक्त विचारों से सहमत हूं बात और निष्कर्ष यह निकला कि लोक सेवा आयोग दंड प्राधिकारी के आदेश के अनुसार परामर्श नहीं किया जा सका

बाहरी विचार पर आधारित है, जो इस मामले में है लोक सेवा आयोग की सलाह से निर्णय प्रभावित होता है संवैधानिक दुर्बलता और शून्य और गैर-स्थायी है। परिणामस्वरूप। प्रस्तावित आदेश से सहमत हूं कि याचिका खारिज करने योग्य है। मैं, हालाँकि, मैं अपने आप को यह समझाने में सक्षम नहीं हूँ कि यह बेहतर है उप पर उच्च न्यायालय के नियंत्रण की अवधारणा की बारीकियाँ राज्य सरकार की शक्तियों के संबंध में न्यायपालिका का समन्वय करना अपनाए गए तर्क अनुच्छेद 235 और 311 के अंतःक्रिया के स्वर और अर्थ के अनुरूप थे। भारत का संविधान. इसलिए, मेरे विद्वान के प्रति पूरे सम्मान के साथ भाइयों, मैंने जो सोचा है उसे रेखांकित करना आवश्यक समझा है नियंत्रण निहित करने की शक्ति का सटीक दायरा और बाहरी सीमाएँ हों संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय में, के माध्यम से तर्क के उप-तरीके जो एलियन पर कदम रखने से बचने में मदद करेंगे क्षेत्र और राज्यपाल की शक्तियों के साथ हाथापाई करना संविधान के अनुच्छेद 233, 234 और 311 के तहत।

(20) इस याचिका के निर्णय के लिए आवश्यक तथ्य सही हैं विवाद के घेरे से परे, और मार्शल हो चुका है संक्षेप में बी. आर. तुली, जे. के निर्णय में, पुनः सहन न करें- याचिका। हमारे उद्देश्य के लिए, कुछ मुख्य रूपरेखाओं पर ध्यान देना पर्याप्त होगा। प्रासंगिक समय पर याचिकाकर्ता को अधीनस्थ न्यायाधीश-सह-मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, अमलोह के रूप में तैनात किया गया था। कुछ शिकायतें प्रथम दृष्टया याचिकाकर्ता की सत्यनिष्ठा के विरुद्ध किया गया तथ्य-खोज जांच की गई और अंततः विभागीय जांच हुई। जांच के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता के सुझाव पर राज्य सरकार द्वारा निलंबित कर दिया गया उच्च न्यायालय। जांच अधिकारी की रिपोर्ट प्राप्त होने पर एवं अनुच्छेद के तहत कारण बताओ नोटिस पर याचिकाकर्ता का स्पष्टीकरण संविधान की धारा 311 जो राज्य सरकार के माध्यम से दी गई थी, उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार से सिफारिश की कि याचिकाकर्ता को सेवा से हटा दिया जाए। कृत्य के बजाय उच्च न्यायालय की सलाह और प्राप्त सामग्री के आधार पर यह, हरियाणा सरकार की राय है कि अनुच्छेद 320(3)(सी) के प्रावधानों को आकर्षित किया गया था और हरियाणा का एक संदर्भ लोक सेवा आयोग आवश्यक था, की राय मांगी हरियाणा लोक सेवा आयोग ने इसके आधार पर निर्णय लिया

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

याचिकाकर्ता को दोषमुक्त करने के लिए 24 अगस्त को एक आदेश पारित किया। 1968, उन्हें तत्काल प्रभाव से बहाल कर दिया गया। साथ ही उच्च न्यायालय से श्री गुलियानी की पदस्थापना के प्रश्न पर विचार करने को कहा गया क्योंकि वे सेवा में बहाल हो चुके हैं।

इस संचार के बावजूद, उच्च न्यायालय द्वारा संभवतः इस कारण से कोई पोस्टिंग आदेश जारी नहीं किया गया था कि उसने राज्य सरकार के आदेश को अवैध और शून्य माना था, यह राज्य सरकार की सलाह पर आधारित था। हरियाणा लोक सेवा आयोग की राय में, उच्च न्यायालय, अप्रासंगिक सामग्री थी। याचिकाकर्ता को अभी भी निलंबित माना जा रहा था, जैसा कि उच्च न्यायालय की राय में, नहीं बहाली का वैध आदेश पारित किया गया था। अपने आप को अंदर ढूँढना इस नाखुश स्थिति के कारण, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में याचिका दायर की संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत रिट याचिका का दावा निर्देश दिया जाए कि पोस्टिंग आदेश जारी किया जाए और याचिकाकर्ता को भुगतान किया जाए निलंबन अवधि के वेतन सहित पूरा वेतन। इस याचिका में अन्य परिणामी आदेशों की भी मांग की गई थी.

(21) के विभिन्न पहलुओं की जांच करने के लिए आगे बढ़ने से पहले उठाए गए सवाल यह देखना उचित होगा कि दोनों मुद्दे अनुच्छेद के वास्तविक इरादे और दायरे के निर्धारण से संबंधित हैं भारत के संविधान की धारा 235 और शक्ति का स्वरूप उच्च न्यायालय नियंत्रण के क्षेत्र में इस प्रावधान से लाभ उठाता है अधीनस्थ न्यायपालिका. मामले में, अनुच्छेद 235 के विश्लेषण पर संविधान के अन्य प्रासंगिक अनुच्छेदों के प्रकाश में यह निष्कर्ष निकलता है कि अधीनस्थ न्यायपालिका पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण सभी प्रकार से और सभी क्षेत्रों में पूर्ण है और संबंध में अंतिम निर्णय लेने की शक्ति शामिल है बर्खास्तगी या निष्कासन की सजा देने का सवाल यह है कि राज्य सरकार को केवल एक औपचारिक आदेश जारी करना है लोक सेवा आयोग से परामर्श करने की आवश्यकता नहीं होगी उठता है, क्योंकि उस स्थिति में परामर्श की प्रक्रिया एक होगी व्यर्थ में व्यायाम.

(22) संबंधित तर्कों की सराहना करने के लिए पार्टियों, के प्रासंगिक प्रावधानों की जांच करना उपयोगी होगा संदर्भ की सुविधा के लिए जो संविधान निर्धारित किया गया है नीचे।

“233. (1) होने वाले व्यक्तियों की नियुक्तियाँ, और पोस्टिंग और किसी भी राज्य में जिला न्यायाधीशों की पदोन्नति की जायेगी राज्य के राज्यपाल के परामर्श से उच्च न्यायालय ऐसे संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा है राज्य।

(2) ऐसा व्यक्ति जो पहले से ही संघ या संघ की सेवा में न हो राज्य केवल जिला न्यायाधीश नियुक्त होने का पात्र होगा यदि वह कम से कम सात वर्ष तक वकील या वकील रहा हो और उच्च न्यायालय द्वारा उसकी सिफारिश की गई हो
नियुक्ति।

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

234. जिला न्यायाधीशों के अलावा अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति किसी राज्य की न्यायिक सेवा राज्यपाल द्वारा बनाई जाएगी राज्य में उनके द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार उस ओर से राज्य की जनता से परामर्श के बाद सेवा आयोग और उच्च न्यायालय के साथ अभ्यास ऐसे राज्य के संबंध में क्षेत्राधिकार.

235. जिला न्यायालयों एवं अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण इसमें पोस्टिंग और प्रमोशन भी शामिल है न्यायिक से संबंधित व्यक्तियों को छुट्टी प्रदान करना किसी राज्य की सेवा करना और उससे निम्नतर कोई पद धारण करना जिला न्यायाधीश का पद उच्च न्यायालय में निहित होगा, लेकिन इस लेख में कुछ भी लेने के रूप में नहीं समझा जाएगा किसी भी व्यक्ति से अपील का कोई भी अधिकार छीन लिया जाए जो वह कर सकता है कानून के तहत उसकी शर्तों को विनियमित करना है सेवा या उससे निपटने के लिए उच्च न्यायालय को अधिकृत करना अन्यथा उसकी शर्तों के अनुसार ऐसे कानून के तहत निर्धारित सेवा.

311. (1) कोई भी व्यक्ति जो सिविल सेवा का सदस्य नहीं है संघ या अखिल भारतीय सेवा या किसी राज्य की सिविल सेवा या संघ या राज्य के अधीन कोई सिविल पद धारण करेगा उसके अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत या हटाया गया जिसके द्वारा उनकी नियुक्ति की गई।

(2) उपरोक्त किसी भी व्यक्ति को बर्खास्त या हटाया नहीं जाएगा या किसी जांच के बाद ही उसे पद से हटाया गया हो उन पर लगे आरोपों की जानकारी दी गयी है के संबंध में सुनवाई का उचित अवसर उन आरोपों और जहां यह प्रस्तावित है, ऐसी जांच के बाद, उस पर ऐसा कोई जुर्माना लगाया जाए, जब तक कि वह ऐसा न कर ले प्रस्तावित दंड पर अभ्यावेदन करने का उचित अवसर दिया गया है, लेकिन केवल आधार पर ऐसी पूछताछ के दौरान पेश किए गए सबूतों का;
बशर्ते कि यह खंड लागू नहीं होगा-

(ए) जहां किसी व्यक्ति को बर्खास्त कर दिया जाता है या हटा दिया जाता है या कम कर दिया जाता है आचरण के आधार पर रैंक जिसके कारण उसे प्राप्त हुआ है किसी आपराधिक आरोप पर दोषसिद्धि; या

(बी) जहां प्राधिकारी को बर्खास्त करने या हटाने का अधिकार है एक व्यक्ति या उसे रैंक में कम करने से संतुष्ट है किसी कारण से, उस प्राधिकारी द्वारा दर्ज किया जाना है लेखन, ऐसा धारण करना उचित रूप से व्यावहारिक नहीं है
जाँच करना; या

(सी) जहां, जैसा भी मामला हो, राष्ट्रपति या राज्यपाल हो, संतुष्ट है कि की सुरक्षा के हित में राज्य के लिए ऐसी जांच कराना समीचीन नहीं है। •

(3) यदि, उपरोक्त किसी भी ऐसे व्यक्ति के संबंध में, कोई प्रश्न यह उठता है कि क्या ऐसा करना उचित रूप से व्यावहारिक है जैसा कि खंड (2) में संदर्भित है, जांच में ऐसे व्यक्ति को पद से कम करने के लिए पदच्युत करने या हटाने का अधिकार प्राप्त प्राधिकारी का निर्णय अंतिम होगा।

(23) उपरोक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि अब तक जिला न्यायालयों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण है संबंधित, उच्च न्यायालय को शक्ति अनुच्छेद 235 से प्राप्त होती है और उच्च न्यायालय की यह शक्ति अपने क्षेत्र में पूर्ण है किसी अन्य एजेंसी द्वारा साझा नहीं किया जाता है. न ही इस प्रावधान के तहत न ही संविधान के किसी अन्य प्रावधान के तहत। राज्य सरकार के कामकाज पर नियंत्रण रखने का कोई अधिकार अधीनस्थ न्यायालयों पर अनुशासनात्मक नियंत्रण रखना या उन पर अनुशासनात्मक नियंत्रण रखना उन अदालतों का संचालन करने वाले न्यायिक अधिकारी। राज्य सरकार अधीनस्थ न्यायपालिका के संपर्क में केवल दो चरणों में आता है। जिला न्यायाधीशों एवं अधीनस्थ सदस्यों की नियुक्ति न्यायपालिका का निर्माण राज्य सरकार द्वारा किया जाता है और नियुक्ति प्राधिकारी होने के नाते राज्य सरकार ही इसके लिए प्राधिकारी भी है सेवा से बर्खास्तगी या निष्कासन का आदेश पारित करना। नियुक्ति जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है अधीनस्थ न्यायाधीशों के रहते हुए उच्च न्यायालय से परामर्श करना राज्य सरकार द्वारा नियमों के अनुसार नियुक्त किया जाता है उच्च न्यायालय और लोक सेवा के परामर्श से तैयार किया गया आयोग। नियुक्ति की शक्ति राज्यपाल में निहित है जो बदले में बर्खास्तगी या हटाने की शक्ति की ओर ले जाता है न्यायिक अधिकारियों की सेवा में कुछ में नियंत्रण का निहितार्थ होता है अधीनस्थ न्यायपालिका पर राज्य सरकार का प्रभाव। हालाँकि सामान्यतः नियंत्रण रखने का प्रश्न उठेगा किसी व्यक्ति को सेवा में शामिल करने के बाद, लेकिन जैसा कि मामले में होता है अधीनस्थ न्यायिक सेवा के सदस्यों, उनकी पदोन्नति सुपीरियर न्यायिक सेवा का अधिकार भी राज्यपाल के पास है आवश्यक निष्कर्ष यह होगा कि प्रारंभिक चरण में भी राज्य सरकार का एक तरह से कुछ हिस्सा होता है, भले ही वह छोटा ही क्यों न हो यह अधीनस्थ न्यायिक सेवा के सदस्यों पर नियंत्रण के क्षेत्र में हो सकता है इसलिए, निर्णय के लिए रीढ़ की हड्डी इस मामले में उठने वाला मुद्दा संबंधित क्षेत्रों का सीमांकन है नियंत्रण और दोनों को विभाजित करने वाले रिज को चिह्नित करने का कार्य सामना करना पड़ रहा है हम शुरू से ही.

(24) जहाँ तक बर्खास्तगी या निष्कासन का आदेश पारित करने की शक्ति है जहां तक सेवा का संबंध है, दोनों पक्षों ने अत्यधिक रुख अपना लिया है। एक ओर से दावा किया जा रहा है कि इस संबंध में अंतिम फैसला अंतिम है यह राज्य सरकार के अधीन है और यह राज्यपाल के लिए खुला है या तो द्वारा किये गये निष्कर्षों और सिफ़ारिशों को स्वीकार करें हाई कोर्ट या फिर अपने आकलन के मुताबिक कार्रवाई करे जांच के निष्कर्ष और अपराधी न्यायिक अधिकारी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण और यहां तक कि पूरी तरह से दोषमुक्त करने का निर्णय लेना उसे। दूसरी ओर से भी उतनी ही दृढ़ता से आग्रह किया जाता है कि अनुच्छेद 235 के तहत नियंत्रण की शक्ति उच्च न्यायालय में निहित है निहितार्थ यह है कि किसी को बर्खास्त करने या हटाने का अंतिम निर्णय सेवा से न्यायिक अधिकारी का दायित्व उच्च न्यायालय और राज्य पर निर्भर करता है सरकार केवल आदेश पारित करने की औपचारिकता निभाती है उच्च न्यायालय द्वारा की गई सिफ़ारिशों की शर्तें। भार उठाते तर्क में आगे, यह आग्रह किया गया है कि अन्य मामलों की तरह ही राज्यपाल मंत्रिपरिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य है अधीनस्थ न्यायपालिका से संबंधित मामलों में अंतिम निर्णय बाकी है उच्च न्यायालय के साथ. कोई अन्य व्याख्या करने से, इस दृष्टिकोण के

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

अनुसार, उच्च न्यायालय के नियंत्रण पर अतिक्रमण जिला अदालतों और उसके अधीनस्थ अदालतों पर। को विपरीत दृष्टिकोण, असंगत परिणामों से दूर रहें इसकी स्वीकृति से बहने वाले पानी को चारे के रूप में उपयोग किया जाता था।

(25) विरोधी दृष्टिकोणों को व्यापक रूपरेखा में प्रस्तुत करने के बाद, अब इसकी बारीकी से जांच करने के लिए मंच तैयार है ये तर्क और इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक प्रावधान संविधान और न्यायिक निर्णयों की भी यही व्याख्या होगी उपयोगी दिशानिर्देश प्रदान करें। अधीनस्थ न्यायपालिका के मामले में वह प्राधिकारी जिसमें नियंत्रण निहित है, एक से भिन्न है जिसके पास नियुक्ति करने के साथ-साथ बर्खास्त करने या हटाने की भी शक्ति है सेवा जबकि नियंत्रण का ऐसा द्वंद्व मौजूद नहीं है अन्य सेवाएँ. क्या यह भेद अधीनस्थ को स्थान देता है जहां तक प्रयोज्यता की बात है तो न्यायपालिका एक अलग स्तर पर है

अनुच्छेद 311 का संबंध है ? मेरे मन का उत्तर प्रतीत होता है नकारात्मक में, क्योंकि अनुच्छेद 311 की भाषा में ऐसा कुछ भी नहीं है यहां तक कि दूर से भी ऐसी व्याख्या का संकेत मिलता है। अन्यथा मानने का अर्थ यह होगा कि अनुच्छेद 311 अनुच्छेद 235 के अधीन है, जिसके निष्कर्ष का कोई आधार नहीं है।

(26) यह व्याख्या का एक स्वीकृत सिद्धांत है कि जब किसी क़ानून में दो प्रावधान एक ही विषय से संबंधित होते हैं, जिनमें से एक है चरित्र में विशिष्ट या विशेष, और दूसरा सामान्य स्वीप का और प्रयोज्यता, विशेष सामान्य को योग्य बनाता है और होना भी चाहिए सामान्य को प्राथमिकता देकर लागू किया जाता है और उससे अप्रभावित रखा जाता है। देखा गया इस दृष्टिकोण से, ऐसा प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 235 एक है सामान्य चरित्र, क्योंकि यह उच्च के नियंत्रण से संबंधित है न केवल सहित सभी क्षेत्रों में अधीनस्थ न्यायालयों पर न्यायाल न्यायालयों के रोजमर्रा के कामकाज पर नियंत्रण के साथ-साथ अनुशासनात्मक और प्रशासनिक नियंत्रण भी। दूसरी ओर, अनुच्छेद 311 इसका संबंध केवल सरकार को बर्खास्त करने या हटाने से है चाहे वह किसी भी विंग या विभाग का सेवक हो। में अनुच्छेद 235 के संबंध में, अनुच्छेद 311, एक विशेष प्रावधान है उल्लिखित प्रमुख दंडों के अधिरोपण से निपटना उसमें. यह सापेक्ष स्थिति होने के कारण, यदि कभी अनुच्छेद 235 और 311 के बीच कोई टकराव उत्पन्न होता है, तो अनुच्छेद की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए ताकि अनुच्छेद 311 की प्रयोज्यता बनी रहे। अप्रभावित.

(27) अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि न तो अनुच्छेद 309 और न ही अनुच्छेद 310 अनुच्छेद 311 और वास्तव में, दायरे और प्रभाव को नियंत्रित करता है अनुच्छेद 310(1) के अंतर्गत आने वाले मामलों के संबंध में इसे सीमित करना होगा अनुच्छेद 311(2) और इसमें नियम बनाने वाले प्राधिकार की परिकल्पना की गई है अनुच्छेद 309 का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जा सकता कि इसे कम किया जा सके अनुच्छेद 311(2) के तहत एक लोक

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

सेवक को दिए गए अधिकारों को प्रभावित करते हैं। यह बात जगननाथ मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसलों से सामने आती है प्रसाद शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (15), और मोती राम, डेका और अन्य बनाम महाप्रबंधक, उत्तर-पूर्व फ्रंटियर रेलवे और अन्य (16)। इनमें से पहले मामले में, एक अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित नियमों में प्रावधान है कि राज्यपाल को सज़ा का आदेश पारित करने का आदेश दिया गया ट्रिब्यूनल की सिफ़ारिश और यह माना गया कि इस हद तक कि इस नियम के लिए राज्यपाल को ट्रिब्यूनल की सिफारिश को बाध्यकारी मानने की आवश्यकता थी, नियम असंगत था संविधान के साथ, अनुच्छेद 311(2) के तहत संबंधित अधिकारी प्रस्तावित कार्रवाई के विरुद्ध राज्यपाल की संतुष्टि के लिए कारण बताने का उचित अवसर पाने का हकदार था उसके संबंध में. इस निर्णय के अनुपात से, यह होगा नियंत्रण की शक्ति के बावजूद उसका अनिवार्य रूप से पालन करें उच्च न्यायालय अनुच्छेद 235 के तहत इस तरह का निर्माण नहीं कर सकता है उस पर रखा जाएगा जिसका प्रभाव वंचित करने पर पड़ेगा न्यायिक अधिकारी को कारण बताने का उचित अवसर पाने का अधिकार है प्रश्न पूछे जाने पर नियुक्ति प्राधिकारी की संतुष्टि के लिए पदच्युति या पद से हटाने की सजा का प्रावधान सेवा उत्पन्न होती है, अन्यथा यह इसका उल्लंघन माना जाएगा अनुच्छेद 311. अनुच्छेद 311 के अंतर्गत राज्यपाल जो आदेश पारित करता है यह महज़ एक औपचारिक आदेश नहीं है बल्कि सराहना पर आधारित आदेश है उस एजेंसी द्वारा उनके समक्ष रखी गई सामग्री, जिसे धारण किया गया था विभागीय जांच. बचित्तर सिंह बनाम राज्य के मामले में पंजाब और अन्य (17) का, जो दृष्टिकोण लिया गया वह विभागीय था एक सरकारी कर्मचारी के खिलाफ की गई कार्यवाही महज एक है निरंतर आगे बढ़ना हालांकि इसमें दो चरण हैं। के बारे में. इन चरणों को इस प्रकार देखा गया:-

"पहला सबूतों के आधार पर निष्कर्ष निकालना है कि क्या आरोप सरकार पर लगाए गए हैं नौकर स्थापित हैं या नहीं और दूसरे तक तभी पहुंचा जाता है जब यह पाया जाए कि वे इतने स्थापित हैं। वह चरण उसके विरुद्ध की जाने वाली कार्रवाई से संबंधित है संबंधित सरकारी कर्मचारी. ये दोनों चरण हैं समान रूप से न्यायिक. इसलिए, कार्यवाही का यह चरण पहले वाले से कम न्यायिक नहीं है। फलस्वरूप किसी सरकार के विरुद्ध की जाने वाली कोई कार्रवाई नौकर को कदाचार का दोषी पाया जाना एक न्यायिक आदेश है और इस प्रकार इसमें इच्छानुसार परिवर्तन नहीं किया जा सकता प्राधिकारी जो दंड देने का अधिकार रखता है। वास्तव में, वही उद्देश्य जिसके लिए नोटिस की आवश्यकता होती है दण्ड के प्रश्न पर दिया जाना यह सुनिश्चित करना है यह ऐसा होगा जो आरोपों पर उचित होगा
स्थापित और मामले की अन्य संबंधित परिस्थितियों पर। इस प्रकार विभागीय जांच में किसी भी आरोप में दोषी पाए गए व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई को प्रशासनिक आदेश के रूप में वर्णित करना पूरी तरह से गलत है।"

उपरोक्त टिप्पणियाँ फिलहाल संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती हैं विभागीय कार्यवाही का चरण जब कार्रवाई की जानी है एक सरकारी कर्मचारी के खिलाफ उचित प्राधिकारी को पारित करना होगा न्यायिक दृष्टिकोण पर आधारित आदेश, न कि केवल औपचारिक आदेश। ऐसा आदेश पारित करते समय इस बात का ध्यान रखना कि क्या इसे करार दिया गया है न्यायिक हो या प्रशासनिक, राज्यपाल को केवल कार्रवाई करनी है बिना अपना दिमाग लगाए हाई कोर्ट की सिफ़ारिश अनुच्छेद 311 के प्रावधानों को निष्प्रभावी बना देगा सरकारी कर्मचारी को उसके सुरक्षा कवच से वंचित करना। पहले प्रतिवादी द्वारा अनुच्छेद 311 पर रखे जाने की मांग की गई निर्माण धारा 311 को सार से वंचित करने का प्रभाव होगा और इसे एक खाली खोल में बदल देना। मैं स्वयं को स्वीकार करने में असमर्थ पाता हूँ यह सुरक्षा के सही दृष्टिकोण के रूप में बनाया जाना चाहिए अनुच्छेद 311. इस प्रावधान का ऐसा

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

दृष्टिकोण केवल प्रक्षेपित किया जा सकता है यदि यह प्रचारित किया जा सके कि न्यायिक नियुक्ति की शक्ति वास्तव में अधिकारी और सार भी उच्च न्यायालय पर निर्भर है, चूँकि सरकार उच्च की अनुशंसा पर न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति का आदेश पारित करने के लिए बाध्य है अदालत। किसी भी स्तर पर इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने की सराहना नहीं की गई और, वास्तव में सर्वोच्च की निम्नलिखित टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए असम राज्य में न्यायालय और अन्य बनाम कुसेवर सैकिया और अन्य (7), ऐसा कोई तर्क उपलब्ध नहीं है—

“इसका मतलब है कि नियुक्ति के साथ-साथ व्यक्तियों की पदोन्नति भी जिला न्यायाधीश बनना राज्यपाल के लिए एक मामला है उच्च न्यायालय और अभिव्यक्ति के साथ परामर्श।" 'जिला न्यायाधीश' में एक अतिरिक्त जिला न्यायाधीश शामिल होता है और एक अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश। जिला न्यायाधीश कर सकते हैं सीधे नियुक्त किया जा सकता है या पदोन्नत किया जा सकता है न्यायपालिका के अधीनस्थ रैंक. लेख का आशय है- दोनों की देखभाल के लिए एड. यदि प्रमोशन से है कनिष्ठ सेवा से वरिष्ठ सेवा, यह एक 'पदोन्नति' है एक व्यक्ति को जिला न्यायाधीश होना चाहिए जिसमें अभिव्यक्ति शामिल है एक अतिरिक्त जिला न्यायाधीश.

(28) याचिकाकर्ता की ओर से हमारे समक्ष यह प्रचारित किया गया था कि हालाँकि इससे संबंधित कोई स्पष्ट न्यायिक घोषणा नहीं थी उच्च न्यायालय के नियंत्रण की सीमा और प्रकृति की परिकल्पना की गई है नियुक्ति की शक्ति के संबंध में अनुच्छेद 235 द्वारा किसी न्यायिक अधिकारी को बर्खास्त करने या हटाने का अधिकार, इसमें निहित है संविधान के अनुच्छेद 311, लेकिन कुछ में संकेत हैं निर्णय किए गए मामलों में से जो प्रशंसनीय और उचित रूप से आगे बढ़ सकते हैं निष्कर्ष हालांकि राज्य सरकार देने के लिए बाध्य थी उच्च न्यायालय की सिफ़ारिशों का उचित सम्मान किया गया

आम तौर पर इस पर कार्रवाई की उम्मीद की जाती थी, लेकिन अंतिम निर्णय बाकी था राज्य सरकार के साथ और वह हर मामले में इसके लिए बाध्य नहीं थी यदि अनुशंसित हो तो बर्खास्तगी या निष्कासन का आदेश जारी करें उच्च न्यायालय। इस संबंध में सबसे पहले उल्लेख किया गया था मोहम्मद गौस बनाम आंध्र राज्य (18)। इस मामले में ए के विरुद्ध उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा जाँच की गई अपीलकर्ता जो एक अधीनस्थ न्यायाधीश था। पूछताछ संबंधित रिश्वतखोरी और निर्णयों में देरी आदि के कुछ आरोपों के लिए, और न्यायाधीशों की एक बैठक में यह निर्णय लिया गया कि रिश्वतखोरी के आरोप के संबंध में बर्खास्तगी और निष्कासन ही उचित सजा होगी अन्य शुल्कों के संबंध में सेवा से।

अपीलकर्ता तब था को निलंबित कर दिया गया और शासन को रिपोर्ट भेज दी गई जिसके आधार पर कार्यवाही हेतु नोटिस जारी किया गया अपीलकर्ता को कारण बताना होगा कि उसे बर्खास्त या हटाया क्यों न जाए सेवा से. सुप्रीम कोर्ट के समक्ष एक दलील उन्नत यह था, क्योंकि राज्यपाल नियुक्ति प्राधिकारी था अपीलार्थी के निलंबन का आदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया अनुच्छेद 311 का उल्लंघन था। इस विवाद को खारिज करते हुए, यह फैसला सुनाया गया कि यह अनुच्छेद 311 के तहत उपयुक्त प्राधिकारी था' वह अपीलकर्ता के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए आगे बढ़ रहा था और यह था उस अधिकारी के लिए मामले में अंतिम आदेश देना। निर्णय इस धारणा पर आगे बढ़ा कि यह राज्यपाल ही थे हमें अनुच्छेद 311 के तहत अंतिम आदेश पारित करना है। फिर से मोहम्मद में गौस बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (19),

---

(18) AJ/R 1957 S.C. 24fi.
(19) A.I.R. 1959 A.P. 493.

इसमें शामिल मुख्य प्रश्न का निर्णय उसी धारणा पर आगे बढ़ा कि न्यायिक अधिकारी के आचरण की जांच करने की शक्ति उच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय में निहित है, जो अनंतिम रूप से दंड का निर्धारण करती है जो न्यायिक अधिकारी पर लगाया जा सकता है। उन्हें संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत कारण बताने का उचित अवसर दिया गया, लेकिन आदेश अंततः राज्यपाल द्वारा पारित किया जाना था। अपने खिलाफ पारित बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती देते हुए, उच्च न्यायालय के समक्ष उठाए गए तर्कों में से एक यह था कि याचिकाकर्ता जिला न्यायाधीश होने के नाते, उच्च न्यायालय उसके खिलाफ जांच करने में सक्षम नहीं था। और इस प्रकार उच्च न्यायालय द्वारा की गई जांच को केवल प्रारंभिक जांच माना जाना चाहिए और यदि इसके आधार पर उसके खिलाफ कार्रवाई की मांग की गई थी तो सरकार को उसके खिलाफ आरोपों को साबित करने से पहले एक और जांच का आदेश देना चाहिए था।
इस तर्क को खारिज करते हुए यह कहा गया:-

"इसलिए उच्च न्यायालय ने अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए इसके अधीनस्थ न्यायालयों का अधीक्षण और नियंत्रण और कानून के बल वाले नियमों के आधार पर, अनुच्छेद 309 के प्रावधान को अनुच्छेद 313 के साथ पढ़ा जाता है, न्यायिक अधिकारियों के आचरण की जांच करने और निर्धारित करने की शक्ति निहित है संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत कारण बताने का उचित अवसर दिए जाने से पहले उन्हें अनंतिम रूप से सज़ा दी जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, किसी लोक सेवक के विरुद्ध जांच के दो चरण होते हैं; पहला चरण तब होता है जब आरोप तय किए जाते हैं और उससे पूछा जाता है कि क्या उसे मौखिक जांच की आवश्यकता है या उसे व्यक्तिगत रूप से सुना जाना चाहिए। इस चरण में उन्हें अपने ऊपर लगे आरोपों का मुकाबला करने का पहला अवसर दिया गया है। दूसरा चरण निष्कर्षों पर पहुंचने के बाद होता है जब उसे नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त व्यक्ति को अपराधी को देना होगा उसके विरुद्ध की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई के विरुद्ध कारण बताने का उचित अवसर। एकमात्र उद्देश्य जिसके लिए अधिनियम के तहत जांच की जा सकती है, सरकार को एक लोक सेवक के दुर्व्यवहार के संबंध में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने में मदद करना है और इस प्रकार उसे अनंतिम रूप से सजा निर्धारित करने में सक्षम बनाना है जो लगाया जाना चाहिए। उस पर, उसे कारण बताने का उचित अवसर देने से पहले, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत आवश्यक है

(29) यह हमें पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम नृपेंद्र नाथ बागची (2) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुपात पर विचार करने के लिए लाता है, जिसका संदर्भ दोनों पक्षों और कुछ द्वारा किया गया है। उसमें की गई टिप्पणियों से दोनों पक्षों ने समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया है। प्रासंगिक समय पर. एन.एन.बागची को अलीपुर में अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में तैनात किया गया था। उनके सेवानिवृत्त होने से कुछ समय पहले, उन्हें निलंबित कर दिया गया और आरोप-पत्र दिया गया, जिसके बाद अंततः श्री बी. सरकार, आयुक्त द्वारा एक जांच की गई, जिसके बाद एक रिपोर्ट में आरोप साबित हुए। राज्य सरकार ने एक नोटिस जारी कर उनसे कारण बताने को कहा कि क्यों न उन्हें बर्खास्त कर दिया जाए, और संतोषजनक कारण नहीं दिखा पाने पर बर्खास्तगी का आदेश पारित कर दिया गया। इस मामले में लोक सेवा आयोग से परामर्श लिया गया, लेकिन उच्च न्यायालय से नहीं। आदेश को कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा रद्द कर दिया गया था, और पश्चिम बंगाल राज्य द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर अपील में, विचार के लिए आए प्रश्नों में से एक यह था कि क्या सरकार या उच्च न्यायालय आदेश दे सकते हैं, पहल कर सकते हैं और जिला न्यायाधीशों के आचरण की जांच करना। अनुच्छेद 235 की व्याख्या करते समय उस प्रक्रिया का संदर्भ दिया गया जिसके द्वारा अंततः अनुच्छेद 233 से 237 को संविधान में सेवाओं पर अध्याय और उच्च न्यायालयों पर अध्याय के बाद अलग रूप में शामिल किया गया और यह देखा गया कि स्वतंत्रता को प्रभावित करने के लिए अधीनस्थ न्यायपालिका में अधीनस्थ न्यायालयों का नियंत्रण उच्च न्यायालय के पास रखा गया। आगे यह देखा गया कि "उच्च न्यायालय को न्यायपालिका पर नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक बनाया गया है।" इन टिप्पणियों के आधार पर, पहले प्रतिवादी की ओर से काफी दृढ़ता के साथ यह तर्क दिया गया कि, यदि किसी न्यायिक अधिकारी को बर्खास्त करने या हटाने के संबंध में अंतिम निर्णय राज्य सरकार में निहित होता है, तो यह नियंत्रण की एकमात्र शक्ति पर प्रभाव डालेगा। अधीनस्थ न्यायपालिका पर उच्च न्यायालय का अधिकार। इस तर्क के लिए एन.एन. बागची के मामले में आगे की टिप्पणियों से समर्थन मांगा गया था कि "जो नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित है वह पूर्ण नियंत्रण है।" इस तर्क को तैयार करने में उत्तरदाताओं के विद्वान वकील उसी जाल में फंस गए हैं जिसके खिलाफ सुप्रीम कोर्ट ने उड़ीसा राज्य बनाम सुधांशु शेखर मिश्रा और अन्य (20) मामले में चेतावनी दी थी, जिसमें क्विन बनाम में निर्धारित नियम को स्वीकार किया गया था। लेदरन (21) के अनुसार, यह बताया गया कि एक निर्णय केवल उसके लिए एक प्राधिकार है जो वह वास्तव में निर्णय लेता है और एक निर्णय में जो सार है वह उसका अनुपात है और न ही उसमें पाया गया प्रत्येक अवलोकन और न ही उसमें किए गए विभिन्न अवलोकनों से तार्किक रूप से क्या अनुसरण होता है। . एक और चेतावनी दी गई कि किसी निर्णय से इधर-उधर वाक्य निकालना और उस पर आगे बढ़ना कोई लाभदायक कार्य नहीं है। एन.एन. बागची के मामले में

टिप्पणियों के संबंध में कि उच्च न्यायालय को अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक बनाया गया था, सुधांसु शेखर मिश्रा के मामले (20) में सुप्रीम कोर्ट ने इन पर निम्नलिखित शब्दों में विचार किया था: -

“अब हम नृपेंद्र नाथ बागची के मामले (2) और रंगा महम्मद के मामले (22) में निर्णयों के अनुपात पर विचार करें। बागची के मामले (2) में, इस न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 235 में पाए गए "नियंत्रण" शब्द में अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार भी शामिल है। उस मामले में निर्णय के लिए एकमात्र प्रश्न यह था कि क्या पश्चिम बंगाल सरकार एक अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में सक्षम थी। इस अदालत ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले को यह कहते हुए बरकरार रखा कि उसके पास ऐसा कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। उस मामले में यही एकमात्र प्रश्न तय किया गया था। यह सच है कि फैसले के दौरान, इस अदालत ने कहा कि उच्च न्यायालय को न्यायपालिका के नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक बनाया गया है, लेकिन वह टिप्पणी केवल निर्णय के लिए उठे प्रश्न के संदर्भ में की गई थी।"

---

(20) ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 647.
(21) 1901 ए.सी. 495.
(22) ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 903=1967—1 एससीआर 454।

“अब हम नृपेंद्र नाथ बागची के मामले (2) और रंगा महम्मद के मामले (22) में निर्णयों के अनुपात पर विचार करें। बागची के मामले (2) में, इस न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 235 में पाए गए "नियंत्रण" शब्द में अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार भी शामिल है। उस मामले में निर्णय के लिए एकमात्र प्रश्न यह था कि क्या पश्चिम बंगाल सरकार एक अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में सक्षम थी। इस अदालत ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले को यह कहते हुए बरकरार रखा कि उसके पास ऐसा कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। उस मामले में यही एकमात्र प्रश्न तय किया गया था। यह सच है कि फैसले के दौरान, इस अदालत ने कहा कि उच्च न्यायालय को न्यायपालिका के नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक बनाया गया है, लेकिन वह टिप्पणी केवल निर्णय के लिए उठे प्रश्न के संदर्भ में की गई थी।"

अन्यथा भी, एन.एन. बागची के मामले में स्पष्ट संकेत हैं कि जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति (बर्खास्तगी और निष्कासन सहित) और पोस्टिंग और पदोन्नति के मामले में सरकार की शक्ति के अलावा अन्य शक्ति से संबंधित पूर्ण नियंत्रण जो पूरी तरह से उच्च न्यायालय में निहित है। . बागची के मामले में निम्नलिखित टिप्पणियाँ, जो इस निष्कर्ष को समर्थन देती हैं, लाभ के साथ पढ़ी जा सकती हैं: -

“यह तर्क उच्च न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया था और यह श्री सेन की प्रतिभा को श्रेय देता है, लेकिन यह भ्रामक है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि राज्यपाल जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है और राज्यपाल ही उन्हें बर्खास्त या हटा सकता है। यह उच्च न्यायालय के नियंत्रण में हस्तक्षेप नहीं करता है। इसका मतलब केवल यह है कि उच्च न्यायालय जिला न्यायाधीशों को नियुक्त या बर्खास्त या हटा नहीं सकता है। उसी प्रकार उच्च न्यायालय दो परंतुकों द्वारा प्रदत्त विशेष क्षेत्राधिकार का उपयोग नहीं कर सकता। उच्च न्यायालय यह निर्णय नहीं कर सकता कि जिला न्यायाधीश को कारण बताने का अवसर देना उचित रूप से व्यावहारिक नहीं है या राज्य की सुरक्षा के हित में ऐसा अवसर देना समीचीन नहीं है। यह तो राज्यपाल ही तय कर सकते हैं. यह कि कुछ शक्तियां राज्यपाल द्वारा प्रयोग की जाती हैं, न कि उच्च न्यायालय द्वारा, जरूरी नहीं कि उच्च न्यायालयों से अन्य शक्तियां छीन ली जाएं। अन्य निहितार्थों को जन्म दिए बिना प्रावधानों को अपना पूर्ण प्रभाव दिया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि यदि दो प्रावधानों के तहत विशेष शक्तियों के प्रयोग के लिए कोई मामला उठता है, तो उच्च न्यायालय को मामले को राज्यपाल पर छोड़ देना चाहिए। इस संबंध में हम संयोगवश यह जोड़ सकते हैं कि हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिला न्यायाधीशों के खिलाफ जांच के संबंध में इन विशेष शक्तियों का प्रयोग करते समय, राज्यपाल हमेशा मामले में उच्च न्यायालय की राय का ध्यान रखेंगे। ऐसा राज्य में जांच प्राधिकारी

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

कोई भी हो, ऐसा ही होगा। लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि उच्च न्यायालय को इससे अधिक जांच नहीं करनी चाहिए कि राज्यपाल को व्यक्तिगत रूप से जांच करनी चाहिए।

इसलिए, अनुच्छेद 311 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो इस निष्कर्ष पर मजबूर करता हो कि उच्च न्यायालय को जांच करने के अधिकार क्षेत्र से बाहर कर दिया गया है यदि अनुच्छेद 235 में ऐसी शक्ति निहित है। हमारे निर्णय में, जो नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित है, वह जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति (बर्खास्तगी और हटाने सहित) और पोस्टिंग और पदोन्नति के मामले में पूर्ण नियंत्रण केवल राज्यपाल की शक्ति के अधीन है।

उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण के अभ्यास के अंतर्गत, उच्च न्यायालय जांच कर सकता है, बर्खास्तगी या निष्कासन के अलावा अन्य दंड दे सकता है, सेवा की शर्तों के अधीन, और सेवा की शर्तों द्वारा प्रदान किए जाने पर अपील का अधिकार, और अनुच्छेद 311 के खंड (2) द्वारा अपेक्षित कारण बताने का अवसर देना, जब तक कि उस खंड के प्रावधान (बी) और (सी) के तहत कार्य करने वाले राज्यपाल द्वारा ऐसा अवसर प्रदान नहीं किया जाता है। इस मामले में उच्च न्यायालय ही जांच कर सकता था। अन्यथा धारण करना उस नीति को उलटना होगा जो इस दिशा में दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ी है।" (जोर दिया गया)।

उपरोक्त टिप्पणियों में अनुच्छेद 233 के संदर्भ में जिला न्यायाधीशों और अनुच्छेद 234 के संदर्भ में अधीनस्थ न्यायाधीशों को नियुक्त करने और अनुच्छेद 311 के तहत एक न्यायिक अधिकारी को बर्खास्त करने या हटाने की राज्यपाल की शक्तियों और उच्च न्यायालय के नियंत्रण के बीच एक स्पष्ट अंतर खींचा गया है। इनके अलावा अन्य क्षेत्रों में अभ्यास। उपरोक्त मामले में कोई संदेह नहीं है कि क्या उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण में बर्खास्तगी या निष्कासन के संबंध में अंतिम निर्णय लेने की शक्ति शामिल है या नहीं, यह सीधे तौर पर नहीं उठता है, लेकिन उन टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए कि राज्यपाल अकेले ही जिला न्यायाधीशों को बर्खास्त या हटा सकते हैं और वह इससे उच्च न्यायालय के नियंत्रण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, यह प्रशंसनीय रूप से प्रचारित नहीं किया जा सकता कि इसकी शक्ति राज्यपाल बर्खास्तगी का औपचारिक आदेश पारित करने तक ही सीमित थे या उच्च न्यायालय जिस निर्णय पर पहुंचा था उसके आधार पर हटाया जाना। इसलिए, मेरे लिए, इस निष्कर्ष से बचना संभव नहीं है कि अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों की सीमा के संबंध में बागची के मामले में की गई टिप्पणियाँ याचिकाकर्ता के मामले को एक सहारा प्रदान करती हैं कि बर्खास्तगी की शक्ति या हटाने का अधिकार राज्य सरकार का है।

(30) इस स्तर पर यह उल्लेख किया जा सकता है कि पार्टियां इस बात पर सहमत हैं कि अनुच्छेद 311(2) न्यायिक अधिकारियों पर समान रूप से लागू है और वे अपने खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने से पहले दो

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

अवसरों के भी हकदार हैं। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि दूसरे अवसर के चरण में अधिकारी के लिए यह खुला है कि वह पूरे मामले को कवर कर ले और दलील दे कि उसके खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया है और फिर असफल होने की स्थिति में आग्रह कर सकता है। अपनी बेगुनाही को साबित करने के लिए, कि उसके खिलाफ प्रस्तावित कार्रवाई या तो अनावश्यक रूप से गंभीर है या अपेक्षित नहीं है।

एकमात्र विवाद यह है कि क्या उच्च न्यायालय को ही अधिकारी के स्पष्टीकरण पर विचार करना है और इस निष्कर्ष पर पहुंचना है कि क्या अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए कोई मामला बनाया गया है और यदि हां, तो उचित रूप से क्या सजा दी जा सकती है या क्या दूसरा अवसर राज्यपाल द्वारा प्रदान किया जाना था जिसे उच्च न्यायालय की सिफारिशों के आलोक में स्पष्टीकरण पर विचार करना था।

(31) चंद्रमौलेश्वर प्रसाद बनाम पटना उच्च न्यायालय और अन्य (23) मामले में, जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में राज्यपाल को उच्च न्यायालय के साथ जो परामर्श करना आवश्यक है, उसके निहितार्थों पर विचार किया गया और यह देखा गया कि अनुच्छेद 233 का अंतर्निहित विचार यह था कि राज्यपाल को उच्च न्यायालय के साथ विचार-विमर्श करने के बाद अपना निर्णय लेना चाहिए। हालाँकि, यह स्पष्ट कर दिया गया था कि इसका मतलब यह नहीं है कि राज्यपाल को उच्च न्यायालय द्वारा दी गई किसी भी सलाह को स्वीकार करना चाहिए और इस अनुच्छेद की आवश्यकता केवल यह थी कि "राज्यपाल को उच्च न्यायालय से गुण या दोषों पर अपने विचार प्राप्त करने चाहिए।" वे व्यक्ति जिनके बीच पदोन्नति या नियुक्ति का विकल्प सीमित होना था। इन टिप्पणियों से समर्थन प्राप्त करते हुए, याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि बर्खास्तगी या सेवा से हटाने के मामलों में भी, उच्च न्यायालय की सलाह बाध्यकारी नहीं हो सकती है, क्योंकि न्यायिक अधिकारी की सेवा से बर्खास्तगी की शक्ति न्यायिक अधिकारी की है। नियुक्ति की शक्ति से लिया गया है जो राज्य सरकार को अनुच्छेद 233 और 234 के तहत प्राप्त है।

(32) यह भी जोड़ा जा सकता है कि न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ विभागीय जांच शुरू करने और संचालित करने की शक्ति जो उच्च न्यायालय में निहित है, उसका यह आवश्यक तात्पर्य नहीं है कि उच्च न्यायालय अकेले किसी न्यायिक को सेवा से बर्खास्त करने या हटाने का अंतिम निर्णय ले सकता है। अधिकारी और संविधान के अनुच्छेद 311(1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए उचित प्राधिकारी था। मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरदूल सिंह (24) में, यह फैसला सुनाया गया था कि अनुच्छेद 311(1) के तहत गारंटी में अपने आप में एक और गारंटी शामिल नहीं है कि एक सिविल सेवक की बर्खास्तगी या निष्कासन के परिणामस्वरूप होने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही भी होनी चाहिए। अनुच्छेद में उल्लिखित प्राधिकारी द्वारा संचालित किया जाएगा।

(23) A.I.R. 1970 S. C. 370.

यह बताया गया कि अनुच्छेद 311 में यह आवश्यक नहीं है कि किसी अधिकारी को बर्खास्त करने या हटाने के लिए इस प्रावधान के तहत अधिकार प्राप्त प्राधिकारी को किसी अधिकारी को बर्खास्त करने या हटाने से पहले जांच शुरू करनी चाहिए या उसका संचालन करना चाहिए या यहां तक कि जांच अपने स्तर पर आयोजित की जानी चाहिए। उदाहरण। इस निर्णय का अनुपात विपरीत प्रस्ताव को खारिज करने के लिए भी उपलब्ध होगा कि जिस प्राधिकारी के पास जांच शुरू करने और संचालित करने की शक्ति है, उसके पास बर्खास्तगी या सेवा से हटाने के प्रभावी आदेश पारित करने की शक्ति होनी चाहिए। यह निष्कर्ष ए.एन.डी. सिल्वा बनाम भारत संघ (25) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से भी निकलेगा, जिसमें यह माना गया था कि न तो साक्ष्य पर निष्कर्ष और न ही सजा, जिसे जांच प्राधिकारी उचित मान सकता है, बाध्यकारी है। दंड देने वाला प्राधिकारी और दंड का प्रस्ताव करना और उसे लागू करना दंड देने वाले प्राधिकारी का काम था और यह शक्ति अप्रतिबंधित थी। नतीजतन, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के लिए यह खुला है कि वह अपने तर्कों के समर्थन में उपरोक्त निर्णयों के अनुपात पर जोर दे। इस स्तर पर पहले प्रतिवादी की ओर से पेश हुए श्री आनंद सरूप द्वारा उठाए गए एक अन्य तर्क का उल्लेख करना प्रासंगिक हो सकता है कि सरदूल सिंह के मामले या डी'सिल्वा के मामले (25) की टिप्पणियां न्यायिक अधिकारियों के मामले में आकर्षित नहीं होंगी। चूँकि इस संबंध में इन अधिकारियों और अन्य सिविल सेवकों के बीच स्पष्ट अंतर है, क्योंकि अन्य सरकारी सेवकों के मामले में दंड देने वाला प्राधिकारी हमेशा वह प्राधिकारी होता है जो उनके काम और आचरण पर नियंत्रण रखता है, जबकि न्यायिक अधिकारियों के मामले में नियंत्रण होता है। उच्च न्यायालय में निहित है और केवल नियुक्ति, बर्खास्तगी और हटाने की शक्ति राज्य सरकार के पास है। सटीक तर्क यह है कि, अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण की इस शक्ति को देखते हुए, अनुच्छेद 311(1) के तहत नियुक्ति प्राधिकारी की शक्तियों पर एक अलग व्याख्या न्यायिक अधिकारियों के मामले में रखी जानी है। अन्य सरकारी कर्मचारियों के मामले में एक.

(24) 1970 S.L.R. 101.
(25) A.I.R. 1962 S.C. 1130.

इस तर्क का आधार यह है कि, चूंकि अनुच्छेद 233 से 237 को न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए पेश किया गया था, अनुच्छेद 235 में नियंत्रण की सीमा की व्याख्या इस तरीके से की जाएगी जो इस उद्देश्य का समर्थन करेगी न कि इस तरह से जो इस उद्देश्य को नकारात्मक करेगी। . इस निर्माण को अपनाने के लिए फर्म अमर नाथ बशेशर दास बनाम टेक चंद (26) से समर्थन मांगा गया था जिसमें निम्नलिखित टिप्पणियाँ हैं: -

"यद्यपि न्यायालय विधानमंडल की नीति या क़ानून की भाषा को प्रभावी करने के परिणाम से चिंतित नहीं हैं, विधानमंडल के अर्थ और इरादे को सुनिश्चित करना उनका कर्तव्य है। ऐसा करने पर, अदालतें हमेशा यह मान लेंगी कि विवादित प्रावधान किसी विशेष उद्देश्य को प्रभावित करने या किसी विशेष आवश्यकता को पूरा करने के लिए डिज़ाइन किया गया था, न कि इसका उद्देश्य उस चीज़ को नकारात्मक करना था जिसे वह प्राप्त करना चाहता था।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुच्छेद 235 को न्यायपालिका की स्वतंत्रता के वांछनीय उद्देश्य को पूरा करने के लिए डिज़ाइन किया गया था, लेकिन अन्य संबंधित अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 233, 234 और 311 स्पष्ट रूप से और स्पष्ट रूप से उस क्षेत्र की सीमाएं प्रदान करते हैं जिसके भीतर नियंत्रण की यह शक्ति होनी थी। व्यायाम किया. यह प्रशंसनीय रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नियंत्रण की शक्ति केवल अन्य क्षेत्रों तक ही विस्तारित होगी। एन.एन. बागची के मामले में टिप्पणियाँ, जिसका संदर्भ पहले ही दिया जा चुका है, श्री आनंद सरूप के तर्क को स्पष्ट रूप से नकारात्मक करेगी और यह संकेत देगी कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के प्रशंसनीय उद्देश्य को इस हद तक स्वीकार किया गया था कि यह शक्तियों के साथ असंगत नहीं था। संविधान के अनुच्छेद 233, 234 और 311 के तहत राज्य सरकार की। अनुच्छेद 233, 234 और 311 को बनाते समय, यदि इरादा उच्च न्यायालय में जिला न्यायाधीशों या उनके अधीनस्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति, बर्खास्तगी या हटाने के मामलों में भी प्रभावी नियंत्रण रखने का था, तो ऐसे विधायी इरादे को उचित तरीके से छुपाया जा सकता था। बिना किसी कठिनाई के भाषा. मामला तब और स्पष्ट हो जाता है जब मार्च, 1948 में आयोजित संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलन द्वारा की गई सिफारिश का संदर्भ दिया जाता है, जिसमें यह सिफारिश की गई थी कि प्रावधान को विशेष रूप से इसमें शामिल किया जाए। जिला

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

न्यायाधीशों सहित संपूर्ण अधीनस्थ न्यायपालिका के संबंध में नियुक्ति और बर्खास्तगी, पोस्टिंग, पदोन्नति और छुट्टी देने की शक्ति उच्च न्यायालयों के हाथों में है (भारत के संविधान का निर्धारण: बी. शिवा राव, पृष्ठ 508)।

---

(26) A.I.R. 1972 S.C. 1548.

हालाँकि इन सिफ़ारिशों को मसौदा समिति ने स्वीकार कर लिया था लेकिन अंततः मसौदे को संशोधित किया गया और इसके परिणामस्वरूप संविधान के अनुच्छेद 233 से 237 का निर्माण हुआ जैसा कि उसमें कहा गया था। इसलिए, इन प्रावधानों के पीछे विधायी मंशा स्पष्ट है, और विधायिका के अर्थ और इरादे को सुनिश्चित करने के बाद, यह न्यायालयों का कर्तव्य है कि विधायिका की नीति या परिणाम के बारे में कोई चिंता किए बिना इसे प्रभावी बनाया जाए। क़ानून की भाषा को प्रभावी बनाना, जैसा कि फ़र्म अमूर नाथ बशेशर दास के मामले (26) सुप्रा में पुष्टि की गई थी। यह मानना संभव नहीं है कि जिला न्यायाधीशों और अन्य न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति की शक्ति राज्यपाल के हाथों में सौंपने के बाद विधायिका को यह पता नहीं था कि यह शक्ति बदले में बर्खास्तगी या सेवा से हटाने की शक्ति प्रदान करेगी, जैसा कि परिकल्पित है। अनुच्छेद 311(1), विशेष रूप से जब (संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलन के प्रस्ताव में, न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति, बर्खास्तगी और हटाने की शक्ति किसके हाथों में रखने की वांछनीयता है) उच्च न्यायालय को स्पष्ट रूप से संविधान निर्माताओं के ध्यान में लाया गया।

(33) यह हमें शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य (1) और पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, आदि बनाम द| में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विचार करने के लिए लाता है। हरियाणा राज्य और अन्य (3), जैसा कि इन मामलों में कुछ टिप्पणियों का संदर्भ दिया गया है। इनमें से पहले मामले में, दोनों अपीलकर्ता पंजाब

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) के सदस्य थे और उनकी परिवीक्षा उच्च न्यायालय की सिफारिश पर पंजाब के राज्यपाल के दो अलग-अलग आदेशों द्वारा समाप्त कर दी गई थी। इस मामले में निर्णय के लिए मुख्य प्रश्न यह था कि क्या संविधान के अनुच्छेद 234 के तहत अधीनस्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति और सेवाओं की समाप्ति राज्यपाल द्वारा व्यक्तिगत रूप से या काउंसिल की सहायता और सलाह पर की जानी थी। मंत्रीगण। इस रीढ़ की हड्डी के मुद्दे पर विचार करते समय, कृष्णा अय्यर, जे. ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं: -

"संविधान की योजना के आलोक में जिसका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, यह संदिग्ध है कि क्या राष्ट्रपति की व्यक्तिगत संतुष्टि के लिए ऐसी व्याख्या सही है। हमारा विचार है कि राष्ट्रपति का अर्थ, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, मंत्री या मंत्रिपरिषद, जैसा भी मामला हो, है, और उसकी राय, संतुष्टि या निर्णय संवैधानिक रूप से सुरक्षित है जब उसके मंत्री ऐसी राय, संतुष्टि या निर्णय पर पहुंचते हैं। न्यायपालिका की स्वतंत्रता, जो संविधान का एक प्रमुख

सिद्धांत है और जिस पर विचलन को उचित ठहराने के लिए भरोसा किया गया है, भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श को अनिवार्य बनाते हुए प्रासंगिक अनुच्छेद द्वारा संरक्षित है। सभी कल्पनीय मामलों में भारतीय न्यायाधीश के सर्वोच्च गणमान्य व्यक्ति के साथ परामर्श भारत सरकार द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए और न्यायालय को यह जांचने का अवसर मिलेगा कि क्या मंत्री के फैसले में कोई अन्य बाहरी परिस्थितियाँ शामिल हुई हैं, यदि वह इससे हटते हैं भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा दी गई सलाह. व्यवहार में ऐसे संवेदनशील विषय में अंतिम शब्द भारत के मुख्य न्यायाधीश का होना चाहिए, उनकी सलाह की अस्वीकृति को आमतौर पर आदेश को ख़राब करने वाले परोक्ष विचारों से प्रेरित माना जाता है। इस दृष्टि से यह महत्वहीन है कि राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री या न्याय मंत्री औपचारिक रूप से इस मुद्दे पर निर्णय लेते हैं।

अनुच्छेद 217 (3) के तहत भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श से संबंधित टिप्पणियों के उत्तरार्ध को राज्यपाल की बर्खास्तगी या हटाने की शक्ति के संबंध में अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण के क्षेत्र में स्थानांतरित करना अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्य, पहले प्रतिवादी की ओर से यह कहा गया था कि नियंत्रण की शक्ति का प्रयोग करते हुए अधीनस्थ न्यायपालिका के किसी सदस्य को बर्खास्त करने या हटाने के मामलों में उच्च न्यायालय की राय बाध्यकारी होगी। राज्यपाल और यदि औपचारिक निर्णय मुख्यमंत्री या न्याय मंत्री द्वारा लिया जाता है तो इसका कोई परिणाम नहीं होगा। इस पहलू पर विचार करते समय, यह ध्यान देने योग्य होगा कि यह प्रश्न कि क्या राज्यपाल उच्च न्यायालय की सिफारिश को स्वीकार करने के लिए बाध्य थे, इस मामले में सीधे तौर पर नहीं उठा था और वास्तव में जैसा कि प्रतीत होता है, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लंबित किसी अन्य अपील में निर्णय के लिए इसे स्थगित कर दिया गया था। निम्नलिखित अवलोकनों से-

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

"हालाँकि, हम इस प्रश्न को आगे नहीं बढ़ाते हैं, क्योंकि, वर्तमान मामले में, सरकार उच्च न्यायालय की 'सिफारिश' और इसके अलावा, संघर्ष समाधान की पद्धति से सहमत हुई है और उस पर कार्य किया है, जब उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण अरुचिकर है कार्यकारी, लंबित अपीलों के एक अलग सेट में सीधे विचार किया जाता है।

इसे छोड़कर, ऊपर उल्लिखित टिप्पणियों में अनुच्छेद 217 (3) के तहत राष्ट्रपति के अधिकार क्षेत्र के बारे में एक अलग दृष्टिकोण लेने का इरादा नहीं था, जो उन्हें एक न्यायाधीश की उम्र को अंततः व्यक्त की गई शक्ति से निर्धारित करने की शक्ति प्रदान करता है। इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ज्योई प्रोकाश मित्तर बनाम माननीय मुख्य न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, कलकत्ता और अन्य, (5) और भारत संघ बनाम ज्योति प्रकाश मित्तर, (27)। यह बताने का इरादा नहीं था कि कानून के मामले में मुख्य न्यायाधीश की सलाह बाध्यकारी होगी, बल्कि यह कि सभी संभावित

मामलों में सलाह भारत सरकार द्वारा स्वीकार की जाएगी। यदि मुख्य न्यायाधीश द्वारा दी गई सलाह से विचलन किया गया था, तो आमतौर पर इसे असंगत विचारों पर आधारित माना जाएगा यदि न्यायालयों के लिए उन परिस्थितियों की जांच करने का अवसर आता है जिनके कारण प्रस्थान की आवश्यकता होती है। यहां यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि सरकार के दोनों अंगों, विशेषकर कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच परामर्श न केवल अनुच्छेद 217 (3) में बल्कि अनुच्छेद 233 सहित संविधान के कुछ अन्य अनुच्छेदों में भी प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 233 के तहत आवश्यक परामर्श की प्रकृति का वास्तविक दायरा चंद्रमौलेश्वर प्रसाद के मामले (23) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही तय किया जा चुका है, उस व्याख्या से हटने का इरादा नहीं हो सकता था। इसलिए, मैं खुद को यह समझाने में असमर्थ हूं कि शमशेर सिंह के मामले (1) में कृष्णा अय्यर, जे. की टिप्पणियां किसी भी तरह से पहले प्रतिवादी के मामले को आगे बढ़ाती हैं या वर्तमान मामले में संघर्ष को सुलझाने में मदद करती हैं।

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

(34) पहले प्रतिवादी की ओर से शमशेर सिंह के मामले (1) के पैरा 78 का संदर्भ दिया गया, जिसमें रे, सी.जे. ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ की थीं: -

"राज्यपाल उच्च न्यायालय की सिफारिश पर कार्य करेंगे। यह अनुच्छेद 235 का व्यापक आधार है।"

शमशेर सिंह के मामले में (1) विचाराधीन मामला एक न्यायिक अधिकारी की परिवीक्षा की समाप्ति से संबंधित मामले में उच्च न्यायालय की सिफारिश का प्रभाव था जो विशेष रूप से उच्च न्यायालय की क्षमता के अंतर्गत आता था और उपरोक्त टिप्पणियाँ इसलिए, किसी न्यायिक अधिकारी की बर्खास्तगी या सेवा से हटाने के मामले में संघर्ष को सुलझाने में मदद नहीं मिलेगी। इसके अलावा, केवल नियंत्रण की शक्ति का व्यापक आधार ही बताया गया है, विशेषकर अनुच्छेद 311 के संबंध में इसके विस्तृत निहितार्थ नहीं।

(35) दूसरे मामले में [जिसे एन.एस. काओ का मामला (3) कहा जाता है] सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या जिला और सत्र न्यायाधीश की पुष्टि उच्च न्यायालय या राज्यपाल द्वारा की जानी थी और इस मामले पर विचार करते समय रे, सी.जे. द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं, जिन्होंने न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाया: -

"राज्यपाल के पास उच्च न्यायालय की सिफारिशों पर बर्खास्तगी, हटाने या समाप्ति का आदेश पारित करने की शक्ति है जो उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण की शक्ति के प्रयोग में की जाती है। बेशक, इस नियंत्रण के तहत उच्च न्यायालय जिला न्यायाधीशों की सेवाएं समाप्त नहीं कर सकता या उन्हें पद से हटाकर या पदावनत करके कोई दंड नहीं दे सकता। जिला न्यायाधीशों पर नियंत्रण यह है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही उच्च न्यायालय द्वारा शुरू की जाती है। यदि किसी अनुशासनात्मक कार्यवाही के परिणामस्वरूप किसी जिला न्यायाधीश को सेवा से हटाया जाना है या कोई सजा दी जानी है जो सेवा की शर्तों के अनुसार होगी।

हालाँकि उपरोक्त मामले में किसी न्यायिक अधिकारी को बर्खास्त करने या हटाने के संबंध में नियंत्रण की शक्ति का प्रयोग करते हुए की गई उच्च न्यायालय की सिफारिशों के सटीक दायरे पर स्पष्ट रूप से विचार नहीं किया गया था, लेकिन उपरोक्त टिप्पणियों में जो निहित है वह यह है कि सिफारिशें उच्च न्यायालय, हालांकि राज्यपाल द्वारा उच्चतम विचार का हकदार है और यहां तक कि लगभग सभी मामलों में उनकी स्वीकृति का भी, फिर भी सेहसे में राज्यपाल पर बाध्यकारी नहीं होगा कि वहां से हटना अनुच्छेद 235 का उल्लंघन होगा।

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

(36) पहले प्रतिवादी के केवल एक और तर्क पर विचार किया जाना बाकी है, जिसे इस प्रकार तैयार किया जा सकता है। यदि यह माना जाता है कि दूसरे अवसर के चरण में राज्यपाल के लिए यह निष्कर्ष निकालना खुला है कि उच्च न्यायालय की सिफारिश के बावजूद दोषी अधिकारी के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया है। सेवा से बर्खास्तगी या निष्कासन का सुझाव, यह अनुच्छेद 235 में परिकल्पित उच्च न्यायालय के नियंत्रण पर आघात होगा, क्योंकि उस स्थिति में उच्च न्यायालय छोटी सजा भी देने की स्थिति में नहीं होगा, अन्यथा वह ऐसा कर सकता था। उन्होंने प्रमुख दंडों में से एक लगाने की सिफारिश नहीं की थी।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धांत को सबसे आगे रखते हुए एक सामंजस्यपूर्ण निर्माण, बादल को दूर करेगा और ऊपर सुझाई गई अनिश्चितता का समाधान करेगा। अनुच्छेद 311(1) के तहत राज्यपाल न्यायिक अधिकारियों का नियुक्ति प्राधिकारी होने के नाते केवल बर्खास्तगी या सेवा से हटाने का आदेश पारित कर सकता है और ऐसे मामले में जहां किसी भी कारण से ऐसा आदेश पारित नहीं किया जाता है, इसका मतलब केवल यह होगा कि परिस्थितियों ने ऐसा किया। ऐसा कोई आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है और यह पाया गया कि प्रस्तावित कार्रवाई अपेक्षित नहीं थी। इस तरह के आदेश के पारित होने के बाद भी उच्च न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करने के लिए खुला होगा कि क्या परिस्थितियाँ किसी भी छोटे दंड को लागू करने को उचित ठहराती हैं और इस बिंदु पर किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उच्च न्यायालय को इस बात से प्रभावित होने की आवश्यकता नहीं है कि राज्यपाल ने पाया कि अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का कोई मामला ही नहीं बनता। भले ही संघर्ष समाधान की इस पद्धति को स्वीकार नहीं किया जाता है, फिर भी मामले को दूसरे दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। उच्च न्यायालय के पास जांच का पहला चरण समाप्त होने के बाद छोटी सजाओं में से एक लगाने का अधिकार क्षेत्र है, लेकिन यदि वह उस दिशा में आवश्यक कदम नहीं उठाता है और राज्यपाल को बर्खास्तगी या जुर्माना लगाने की सिफारिश करने का निर्णय लेता है। अपराधी अधिकारी के स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद निष्कासन, मामला <' नियंत्रण से परे चला जाता है जो उच्च न्यायालय में निहित है और संविधान के अनुच्छेद 311 के अनुसार निर्णय लेने के लिए राज्यपाल के अधिकार क्षेत्र में आता है। राज्यपाल द्वारा इस शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण की शक्ति पर अतिक्रमण नहीं होगा, क्योंकि बर्खास्तगी या निष्कासन सेवा की शर्तों से संबंधित है। इस दृष्टिकोण को उड़ीसा उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार बनाम बरदाकांत मिश्रा और अन्य (28) मामले में उड़ीसा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय के अनुपात से समर्थन मिलता है। इस मामले में संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण की शक्ति का दायरा विचार के लिए सामने आया था, और यह जांच करते समय कि क्या अनुशासनात्मक कार्यवाही में उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील उच्च न्यायालय के बाहर हो सकती है या नहीं, इस प्रकार ध्यान दिया गया:-

“विद्वान महाधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि संविधान के तहत कुछ नियंत्रण और संतुलन प्रदान किए गए हैं और राज्यपाल के पास अपील के अधिकार का प्रावधान ऐसा नियंत्रण और संतुलन होगा। हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं. अध्याय VI में अनुच्छेद 233 से 235 तक नियंत्रण और संतुलन प्रदान किया गया है, जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि जिला न्यायाधीशों और मुंसिफों को बर्खास्त करने और हटाने की शक्ति राज्यपाल में निहित है। अत: यदि अधीनस्थ न्यायाधीश और ए.डी.एम. (जे) सीधे भर्ती किए जाते हैं और पदोन्नति द्वारा नियुक्त नहीं किए जाते हैं। यह पर्याप्त जांच और संतुलन है. यद्यपि जिला न्यायाधीशों को बर्खास्त करने और हटाने की

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

अंतिम शक्ति राज्यपाल को प्रदान की गई है, न्यायपालिका की स्वतंत्रता को प्रभावित करने के लिए अधीनस्थ न्यायपालिका का नियंत्रण राज्यपाल की शक्तियों से बाहर कर दिया गया है। अनुशासनात्मक कार्यवाही उच्च न्यायालय द्वारा शुरू की जानी है। जब उच्च न्यायालय कुछ मामलों में बर्खास्तगी या निष्कासन की सजा का सुझाव देता है तो राज्यपाल प्रस्ताव से सहमत नहीं हो सकते हैं। लेकिन यह जिला न्यायाधीशों पर अन्य श्रेणियों के दंड लगाने और अधीनस्थ न्यायाधीशों और ए.डी.एमएस (जे) के मामलों में बर्खास्तगी या हटाने के लिए उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण में हस्तक्षेप नहीं होगा, जहां उन्हें पदोन्नति द्वारा नियुक्त किया गया है। बल्कि, यदि अपील की शक्ति राज्यपाल में निहित है तो कोई नियंत्रण और संतुलन नहीं होगा और संपूर्ण नियंत्रण राज्यपाल में निहित होगा। न्यायपालिका की स्वतंत्रता ख़त्म हो जाएगी।"

मेरी राय में, ये टिप्पणियाँ सही दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती हैं कि सीधे न्यायाधीशों और अन्य अधीनस्थ न्यायिक अधिकारियों को बर्खास्त करने या हटाने की अंतिम शक्ति कहाँ है। यह तर्क कि यह अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण की शक्ति पर अतिक्रमण होगा, उपरोक्त मामले में भी सही ढंग से खारिज कर दिया गया था।

(37) प्रतिवादी की ओर से उठाए गए विवाद का एक और पहलू यह है कि इससे न्यायिक अधिकारियों पर दोहरा नियंत्रण लागू हो जाएगा, जिसके परिणामस्वरूप न्यायिक प्रणाली के सुचारू कामकाज में बाधा आएगी। नृपेंद्र नाथ बनाम मुख्य सचिव, पश्चिम बंगाल सरकार (14) मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा नियंत्रण और संतुलन तथा नियंत्रण के द्वंद्व के इस पहलू पर इन शब्दों में विचार किया गया था:-

"यह निस्संदेह सच है कि संविधान के अनुच्छेद 310, 233 और 234 के साथ पढ़े गए अनुच्छेद 311 के तहत किसी राज्य की न्यायिक सेवा के सदस्य के संबंध में नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल है, वास्तविक बर्खास्तगी प्राधिकारी भी राज्यपाल होना चाहिए।

इसका मतलब केवल यह है कि 'बर्खास्तगी का वास्तविक आदेश राज्यपाल द्वारा किया जाना है।' हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय1 के नियंत्रण को हटाकर राज्यपाल या सरकार को अनुशासनात्मक कार्यवाही संचालित करने या उच्च न्यायालय से अलग अनुशासनात्मक न्यायाधिकरण स्थापित करने का अधिकार होगा। एक ही विषय पर संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों को, जहां भी संभव हो, लगातार पढ़ा जाना चाहिए और नंबर 1; एक दूसरे के विरोध में. संविधान के इन विभिन्न अनुच्छेदों का सबसे अच्छा समाधान उच्च, न्यायालय द्वारा अनुशासनात्मक जांच करने और बर्खास्तगी या निष्कासन का

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

उचित आदेश देने के लिए सरकार को जांच के निष्कर्ष पर अपनी "रिपोर्ट भेजने" में निहित होगा। किसी विशेष मामले में अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार का उपयोग करने वाले उच्च न्यायालय की रिपोर्ट और सिफारिश को स्वीकार करने से संविधान की व्याख्या में कोई बदलाव नहीं आ सकता है, जब वह दोहरी शक्ति प्रदान करता है, पहला अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय में नियंत्रण निहित करके और दूसरा, नियुक्ति, कार्यकाल और बर्खास्तगी पर रोक लगाकर। संविधान के अनुच्छेद 233, 234, 310 और 311 के तहत सरकार। यह द्वंद्व एक अमिश्रित बुराई नहीं है, बल्कि नियंत्रण और
संतुलन के उस संपूर्ण संवैधानिक सिद्धांत का एक उदाहरण है, ताकि कोई भी संस्था इस अभ्यास में अत्याचारी होने का जोखिम न उठा सके। इसकी शक्ति और इस प्रकार भारत में सार्वजनिक सेवाओं की अत्यंत आवश्यक सुरक्षा सुनिश्चित करना।"

उपरोक्त टिप्पणियाँ/पहले प्रतिवादी के तर्क के दोनों पहलुओं का पूर्ण उत्तर प्रदान करती हैं और, सम्मान के साथ, मैं इस निष्कर्ष के समर्थन में ऊपर व्यक्त तर्क को अपनाता हूं कि, राज्य द्वारा बर्खास्तगी या हटाने की शक्ति के प्रयोग से सरकार, अधीनस्थ न्यायपालिका पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण प्रभावित नहीं होता है और अनुच्छेद 311 की व्याख्या जो इसे पूर्ण प्रभाव डालने और संविधान द्वारा परिकल्पित सार्वजनिक सेवाओं को सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम बनाती है, इस आधार पर चुनौती के लिए खुला नहीं है कि यह बेतुके नतीजे सामने आएंगे।

(38) ऊपर की गई संपूर्ण चर्चा के आलोक में अंततः जो स्थिति उभरकर सामने आती है, उसे इस प्रकार तैयार किया जा सकता है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता के मूलभूत सिद्धांत को सबसे आगे रखते हुए, अनुच्छेद 235 में परिकल्पित नियंत्रण को सभी मामलों में और विभागीय कार्यवाही शुरू करने और आयोजित करने की शक्ति सहित सभी क्षेत्रों में पूर्ण माना जाना चाहिए, सिवाय इसके कि यह किस सीमा तक सीमित है। संविधान के अनुच्छेद 233, 234 और 311। विभागीय कार्यवाही शुरू करने और संचालित करने की शक्ति में बर्खास्तगी या सेवा से हटाने के अलावा सजा देने की शक्ति भी शामिल है, जिसका प्रयोग केवल संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत कार्य करने वाले राज्यपाल द्वारा किया जा सकता है। ऐसी शक्ति का प्रयोग करते समय राज्यपाल को उच्च न्यायालय द्वारा की गई जांच और दोषी अधिकारी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद लगाए जाने वाले दंड के संबंध में उसके द्वारा की गई सिफारिश के आधार पर आगे बढ़ना होता है। . ये सिफ़ारिशें उच्च न्यायालय द्वारा अपनी

नियंत्रण शक्ति का प्रयोग करते हुए की गई हैं। यद्यपि बर्खास्तगी या सेवा से हटाने की सजा देने के मामले में अंतिम निर्णय राज्यपाल द्वारा लिया जाना है, लेकिन अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचते समय राज्यपाल को उच्च न्यायालय की सिफारिश का उचित सम्मान करना चाहिए और सभी संभावित मामलों में ऐसा करना चाहिए। इन सिफ़ारिशों के अनुसार कार्य करें. हालाँकि, यदि किसी अलग मामले में राज्यपाल उच्च न्यायालय द्वारा अनुशंसित दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाता है, तो कानून में यह नहीं कहा जा सकता है कि राज्यपाल का आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना है। यदि राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा दी गई सलाह से विचलन किया गया है, तो यह न्यायालय द्वारा जांच के लिए खुला हो सकता है कि क्या बाहरी विचार ऐसे निर्णय का आधार हैं, लेकिन निर्णय को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है। क्षेत्राधिकार का अभाव. इस दृष्टिकोण की स्वीकृति से उच्च न्यायालय में निहित नियंत्रण की शक्ति में कोई क्षरण नहीं होता है और इसका एकमात्र निहितार्थ यह है कि संविधान में परिकल्पित नियंत्रण और संतुलन का सिद्धांत भी लागू होगा। संविधान के निर्माताओं ने अनुच्छेद

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

311 के तहत सेवाओं को सुरक्षा प्रदान करते समय जिस उद्देश्य को ध्यान में रखा था, उसके अनुरूप ऐसी व्याख्या ही एकमात्र उचित व्याख्या होगी यदि संविधान के अनुच्छेद 235 और 311 पर सामंजस्यपूर्ण निर्माण किया जाना है। और उनमें से किसी को भी दूसरे को निरर्थक बनाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस दृष्टिकोण से देखने पर, राज्य सरकार के 24 अगस्त 1968 के आदेश की वैधता, जिसमें पाया गया कि याचिकाकर्ता को बर्खास्त करने या हटाने का कोई मामला नहीं बनाया गया था, चुनौती के लिए खुला नहीं है। हालाँकि, यह आदेश इस आधार पर अवैध है कि इसमें अनावश्यक सामग्री शामिल हो गई है और फैसले में असंगत परिस्थितियाँ आ गई हैं, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा इसे उचित रूप से नजरअंदाज किया गया।

इसका परिणाम यह होगा कि इस याचिका में कोई राहत नहीं दी जा सकेगी, जिसके परिणामस्वरूप यह याचिका खारिज कर दी जाएगी।

न्यायालय द्वारा

(39) उपरोक्त निर्णयों में दर्ज कारणों और सर्वसम्मत निष्कर्ष के आधार पर, यह याचिका खारिज कर दी गई है, लेकिन पार्टियों को अपनी लागत वहन करने के लिए छोड़ दिया गया है।

. .के.एस.के.

19143 1एलआर-सरकार। प्रेस, सी

बी. आर. गुलियानी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय आदि (गुजराल, जे.)

अवीकरण :

स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णयर्णवादी के सीमित उपयोग के लि एहैताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सकें और किसी अन्य उद्देश्य के लि ए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णयर्ण का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणित होगा और निष्पादन और कार्यावअन्य के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

वसुंधरा राव
प्रशिक्षुन्यायिक अधिकारी,
हरियाणा